दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 1

अध्यात्म-पद

(राग-सोरठ)

अन्तर उज्जल करना रे भाई ! ॥टेक ॥

सुभ कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे ॥अंतर० ॥

जप तप तीरथ यज्ञ व्रतादिक आगम अर्थ उरचना रे।

विषय कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि पचि मरना रे ॥अंतर० ॥

बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसों कीये पार उतरना रे।

नाहीं है सब लोक रंचना, ऐसे वेदन वरना रे ॥अंतर० ॥

कामादिक मनसौं मन मैला भजन किये क्या तिरना रे।

'भूधर' नील बसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे ॥अंतर० ॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (337) एक अंक 35 पैसा [वैशाख : 2499

श्री पंडित दीपचन्दजी साधर्मीकृत

ज्ञान-दर्पण

[अंक ३३६ से आगे]

गुण परजाय गहि बन्यो है स्वरूप जाकौ, गुण परजाय बिनु द्रव्य नहिं पाईये।
द्रव्य को स्वरूप गहि गुण परजाय भये, द्रव्य ही में गुण परजाय से बताईये॥
सहज स्वभाव जातैं भिन्न न बतायौ द्रव्य, द्रव्य बिन ही वस्तु कैसें ठहराईये।
तातैं स्याद्वाद विधि जग में अनादि सिद्ध, वचन के द्वारि कहो कहाँ लगि पाईये॥73॥
गुण के स्वरूप ही तैं द्रव्य परजाय ह्वै है, केवली उकत धुनि ऐसैं करि गावै है।
द्रव्य गुण दोऊ परजाय ही मैं पाइयतु, द्रव्य ही मैं गुण परजाय ये कहावै है।
यातैं एक एक में अनेक सिद्धि होत महा, स्याद्वादद्वारि गुरुदेव यौ बतावै है।
कहे 'दीपचंद' पद आदि देके कोऊ सुनो, आपपद लखें भवि भवपार पावै है॥74॥
एक गुणसेती दूजे गुणसौं लगाय भेद, सधत अनंत बार सात भंग नीके हैं।
एक एक गुणसेती अनंता अनंत बार, साधत अनंत लगि लगैं नहिं फीके हैं।
अनंता अनंत बार एक-एक गुण सेती, साधिए सपतभंग भेदिये सुही के हैं।
यातैं चिदानंद मैं अनादि सिद्ध शुद्धि महा, पूरण अनंत गुण दीप लखे जीके हैं॥75॥
गुण एक-एक जाके परजै अनंत कहे, प्रजे मैं अनंतानंत नाना विस्तर्यौ है।
नाना में अनंत घट, घट मैं अनंत कला, कलाजिं अखंडित अनंतरूप धर्यो है।
रूप में अनंत सत्ता सत्ता मैं अनंत भाव, भाव कौं लखाव हू अनंत रस भर्यो है।
रस के सुभाव मैं प्रभाव है अनंत 'दीप', सहज अनंत यौ अनंत लगि कर्यो है॥76॥
दरवस्वरूप सो तो द्रव्यमाहिं रहै सदा, और कौं न गहै रहै जथारथताई है।
गुणकौ स्वरूप गुणमाहिं सो विराज रहै, परजाय दशा वाकी वाहीमाहिं गाई है।
जैसौ गुण जाकौं जाकौं जाही भाँति करै और, विषमता हरै वामैं ऐसी प्रभुताई है।
तत्त्व है सकति जमौं विभुत्व अखंड तामैं, कहै 'दीप' ऐसैं जिनवाणी मैं दिखाई है॥77॥
जाके देस देस मैं विराजित अनंत गुण, गुणमाहिं देस असंख्यात गुण पाइए।
एक-एक गुणनि मैं लक्षण है न्यारो न्यारो, सबनकी सत्ता एक भिन्नता न गाइए॥
परजाय सत्तामाहिं व्यय उतपाद ध्रुव, षटगुणी हानि वृद्धि ताही मैं बताइए।
निहचै स्वरूप स्व के द्रव्य गुण परजाय, ध्यावौ सदा तातैं जीव अमर कहाइए॥78॥

[क्रमशः]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

मई : 1973 ☆ वैशाख : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 1

गुरु महिमा

श्रीगुरु महिमा अपार है। श्रीगुरु महिमा की वास्तविकता जीव को तभी आ सकती है कि गुरु के द्वारा बतलाये हुए महा आनंदमय शुद्धात्मतत्त्व को जब अपने लक्षगत करे और ऐसे शुद्धात्मतत्त्व के आनंद वेदन में आने पर ही गुरु के प्रति-ज्ञानियों के प्रति जो उपकारबुद्धि की ऊर्मियाँ जागृत होती हैं, वे अपूर्व होती हैं... क्योंकि गुरुमहिमा के सच्चे ज्ञानपूर्वक उनके उपकार को स्वयं ने ग्रहण किया है।

गुरु यह कोई व्यक्ति का नाम नहीं है परंतु चैतन्य की शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि वीतरागी गुण जिन्हें प्रगट हुए हैं, वे सब गुरु हैं। ऐसे गुणों से जो गुरु को पहिचानता है, उसे ही गुरु की सच्ची सेवा और सच्ची भक्ति होती है और ऐसी सच्ची गुरुसेवा के फल में सम्यक्त्वादि निजगुण की प्राप्ति होती है।

अहा, जिसे गुरु मिले, उसे निजगुण मिला और जिसे निजगुण मिला, उसी ने गुरु को पहिचाना।—कैसी सुंदर संधि है, गुरु-शिष्य के गुणों की! श्रीगुरु द्वारा बतलाए हुए भेदज्ञान द्वारा अंतर्मुख होकर जिसने निजगुण की अनुभूति की, उसके ऊपर पंच परमेष्ठी आदि श्रीगुरु प्रसन्न हुए हैं। संसार की पंक्ति में से वह जीव बाहर निकलकर पंच परमेष्ठी की नात में बैठा। अहो! यह श्रीगुरु का उपकार है कि आनंदमय आत्मतत्त्व में ले जाकर जीव को दोषों से छुड़ाकर, गुणरूप और आनंदरूप बना देते हैं।

शुद्धोपयोग का फल—अतीन्द्रिय महानसुख

[वही प्रशंसनीय है; राग का फल प्रशंसनीय नहीं]

आचार्य भगवान ने प्रवचनसार में पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके मोक्ष का स्वयंवर-मंडप रचा है... हम पंच परमेष्ठी में मिलाकर मोक्षलक्ष्मी को साधने निकले हैं, उसका यह वर्णन है।

मोक्ष का साधन क्या? कि शुद्धोपयोगरूप वीतरागचारित्र ही मोक्ष का साधन है; और भूमिकानुसार आया हुआ शुभराग तो बंध का कारण है, इसलिये वह हेय है।—इसप्रकार शुभराग को छोड़कर शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग को आचार्यदेव ने अंगीकार किया है... स्वयं शुद्धोपयोगी चारित्रदशारूप परिणमन किया है।

इसप्रकार शुभ-अशुभ परिणति को छोड़कर और शुद्धोपयोग परिणति को आत्मसात करके आचार्यदेव शुद्धोपयोग अधिकार प्रारंभ करते हैं; स्वयं तद्रूप परिणमन करके उसका कथन करते हैं। प्रथम शुद्धोपयोग के प्रोत्साहन के लिए उसके फल की प्रशंसा करते हैं। अहो, शुद्धोपयोग जिनको प्रसिद्ध है, ऐसे केवली भगवंतों को आत्मा में से उत्पन्न अतीन्द्रिय परम सुख है। सर्व सुखों में उत्कृष्ट सुख केवलियों को है; वह सुख रागरहित है, इन्द्रियविषयों से रहित है, अनुपम है और अविनाशी एवं अविच्छिन्न है। संसार के किन्हीं विषयों में ऐसा सुख नहीं।

अहो, ऐसा अपूर्व आत्मिकसुख परम अद्भुत आह्लादरूप है, जीवों ने पूर्वकाल में कभी उसका अनुभव नहीं किया है। सम्यग्दर्शन में ऐसे अपूर्व सुख के स्वाद का अंश आ जाता है, परंतु यहाँ शुद्धोपयोग के फलरूप पूर्ण सुख की बात है।

शुद्धोपयोग से आत्मा स्वयं अपने में लीन होने पर अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न हुआ; उसमें अन्य किसी साधन का आश्रय नहीं, अकेले आत्मा के ही आश्रय से वह सुख प्रगट हुआ है। उसे एक आत्मा का ही आश्रय है और अन्य के आश्रय से निरपेक्ष है, अन्य किसी का आश्रय उसे नहीं—इसप्रकार अस्ति-नास्ति से कहा। आत्मा से ही उत्पन्न और विषयों से रहित—ऐसा सुख ही सच्चा सुख है, और उस सुख का साधन शुद्धोपयोग है। इसलिये वह शुद्धोपयोग

उपादेय है। ऐसे शुद्धोपयोग के फलरूप परम सुख का स्वरूप बतलाकर उस ओर आत्मा को प्रोत्साहित किया है। हे जीव! अतीन्द्रिय सुख के कारणरूप ऐसे शुद्धोपयोग में उत्साहसहित आत्मा को लगा।

संसार के जितने इंद्रिय-सुख हैं, उन सबसे शुद्धोपयोग का सुख बिल्कुल भिन्न जाति का है, इसलिए वह अनुपम है, उसे अन्य किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। अहो, शुद्धोपयोगी जीव का परम अनुपम सुख, वह अज्ञानियों के लक्ष में भी नहीं आता। आगे कहेंगे कि सिद्ध भगवंतों के और केवली भगवंतों के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख का स्वरूप सुनते ही जो जीव उत्साह से उसका स्वीकार करते हैं, वे आसन्न भव्य हैं। इस अतीन्द्रिय सुख के वर्णन को 'आनंद अधिकार' कहा है; हे जीवो! विषयों में सुखबुद्धि छोड़कर आत्मा के आश्रय से ऐसा परम आनंदरूप परिणमन करो।

यह सुख शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट होता है। शुद्धोपयोग द्वारा प्रगट किया हुआ सुख सादि-अनंत काल में कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, वह अनंत काल रहनेवाला है। 'सादि-अनंत अनंत समाधि सुख' ऐसा सुख शुद्धोपयोग से ही प्राप्त होता है। अतीन्द्रिय सुख में शुभराग का तो कहीं पर नामनिशान नहीं; राग से और राग के फलरूप सामग्री से पार ऐसा वह सुख है। वह सुख प्रगट होने के बाद उसमें कभी भंग नहीं पड़ता, अविच्छिन्नरूप से निरंतर वह सुख परिणमन करता है। शुद्धोपयोगी जीवों को ऐसा उत्कृष्ट अतीन्द्रियसुख है, वह सर्वथा इष्ट है, आदरणीय है, प्रशंसनीय है।—शुद्धोपयोग का ऐसा फल बतलाकर आत्मा को उसमें प्रोत्साहित किया है। जिसप्रकार सूर्य को उष्णता के लिए या प्रकाश के लिए अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, स्वयमेव वह उष्ण और प्रकाशरूप है, उसीप्रकार सुख और ज्ञान के लिए आत्मा को किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं, वह स्वयमेव स्वभाव से ही सुखस्वरूप और ज्ञानस्वरूप है। अहो, ऐसे आत्मा को श्रद्धा में तो लो। सिद्धों के सुख को पहिचानने पर ऐसा आत्मस्वभाव पहिचानने में आता है। इंद्रियों से ज्ञान होता है, राग से सुख होता है—ऐसा माननेवाले सिद्धों और केवलियों को मानते ही नहीं; वीतराग परमेश्वर को वे नहीं जानते, उन्हें तो राग ही मान्य है। रागरहित ज्ञान और सुख प्रतीति में ले तो राग से पृथक् आत्मस्वभाव अनुभव में आ जाये। आचार्य भगवान को स्वयं वैसे अतीन्द्रिय सुख का और अतीन्द्रिय ज्ञान का अंश प्रगट हुआ, तब सर्वज्ञ के सुख की और ज्ञान की सच्ची प्रतीति हुई। ●

सम्यग्दृष्टि के आठ अंगों का वर्णन

[अंक 336 से आगे]

चैतन्यतत्त्व जिसमें उल्लसित है, ऐसे सम्यक्त्व की अद्भुत महिमा

अहा, चैतन्य में अनंत स्वभाव विद्यमान हैं, जिसकी अद्भुत महिमा है। उसके सन्मुख होकर रागरहित निर्विकल्प प्रतीति करने से अतीन्द्रिय आनंद के वेदन सहित सम्यग्दर्शन होता है, जिसमें अनंत गुणों के निर्मल भावों का समावेश है, वह मोक्षमार्ग है।—ऐसे सम्यक्त्व के साथ धर्मी जीव को निःशंकादिक आठ गुण होते हैं, उनका आनंदकारी वर्णन आपने अगले अंक में पढ़ा और शेष भाग यहाँ दिया जा रहा है। यह वर्णन स्वामीजी के छहढाला पर दिये गये प्रवचन का भाग है।

卐 4. अमूढदृष्टि अंग का वर्णन 卐

आत्महित का सत्य मार्ग जिसने जान लिया है—ऐसा धर्मात्मा सच्चे-झूठे की परीक्षा करने में जरा भी घबराता नहीं; सच्चे देव-गुरु-धर्म और झूठे देव-गुरु-धर्म, उन्हें अच्छी तरह पहचानकर वह असत्य मार्ग की प्रशंसा भी छोड़ देता है। अन्तर में तो असत्यमार्ग को दुःखदायक जानकर छोड़ ही दिया है, और मन से-वचन से-काया से भी वह कुमार्ग की प्रशंसा या अनुमोदना नहीं करता। कुमार्ग का सेवन बहुत लोग करते हो, बड़े-बड़े राजा भी उसका सेवन करते हों तो भी धर्मात्मा को संदेह नहीं होता कि उसमें कुछ सच्चा होगा? वह तो अपने जिनमार्ग में निःशंक रहता है। ऐसा अमूढ दृष्टिपना धर्मी को होता है।

वीतराग-सर्वज्ञ अरिहंत व सिद्ध परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी देव को वह नहीं मानता।

रत्नत्रयधारी निर्ग्रंथ मुनिराज को छोड़कर अन्य किसी कुगुरु को वह नहीं मानता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागधर्म, उसके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म को वह मोक्ष का कारण नहीं मानता, और उसका सेवन भी नहीं करता।

—इसप्रकार देव-गुरु-धर्म के संबंध में धर्मी को मूढ़ता नहीं होती। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को माननेवाला जीव समाज में करोड़ों मूढ़ लोगों के द्वारा पूजा जाता हो, अरे! देव उसके पास आता हो तो भी धर्मी को मार्ग की शंका नहीं होती, और तत्त्वनिर्णय में वह घबराता नहीं। निश्चयरूप जो अपना शुद्ध आत्मस्वरूप उसमें तो वह निःसंदेह है, दृढ़ है और व्यवहार में अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र-तत्त्व इत्यादि के निर्णय में भी वह निःसंदेह है, दृढ़ है। सुख का मार्ग ऐसा वीतराग जैनमार्ग, और दुःख का मार्ग ऐसा कुमार्ग, उसकी अत्यंत भिन्नता जानकर कुमार्ग की सेवा-प्रशंसा-अनुमोदना सर्व प्रकार से छोड़ देता है।

कुमार्ग के माननेवाले बहुत जीव हो और सत्यमार्ग के जाननेवाले जीव बहुत कम हो—किंतु इससे धर्मात्मा को घबराहट नहीं होती कि कौन-सा मार्ग सच्चा होगा? अरे, चाहे में अकेला होऊँ तो भी मेरे हित का मार्ग मैंने जान लिया है, वही परम सत्य है, और ऐसा हितमार्ग दिखानेवाले वीतरागी देव-गुरु ही सच्चे हैं। स्वानुभव से मेरा आत्मतत्त्व मैंने जान लिया है, इससे विरुद्ध जो कोई मान्यता हो, वे सब झूठी हैं; ऐसी निःशंकता से धर्मी जीव ने कुमार्ग की मान्यता को असंख्य आत्मप्रदेश में से निकाल दी है। वह शुद्धदृष्टिवंत जीव किसी भय से-आशा से-स्नेह से या लोभ से कुदेवादि के प्रति प्रणाम-विनयादि नहीं करता।

अरे जीव! तुझे ऐसा मनुष्यत्व मिला; ऐसा सत्य जैनधर्म का योग मिला, तो अब इस अवसर में तेरी विवेकबुद्धि से सत्य-असत्य की परीक्षा करके निर्णय कर; आत्मा के लिये परम हितकार ऐसे सर्वज्ञ भगवान के मार्ग का स्वरूप समझकर उसका सेवन कर, और कुमार्ग के सेवनरूप मूढ़ता को छोड़। अहिरंत भगवान का मार्ग जिसने जान लिया, वह जीव जगत में कहीं भ्रमित नहीं होता; भगवान के मार्ग का निःशंकता से सेवन करता हुआ वह मोक्ष को साधता है। सम्यग्दृष्टि का ऐसा अमूढ़दृष्टित्व-अंग है। (इस अमूढदृष्टि अंग के पालन में रेवतीरानी का उदाहरण शास्त्र में प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्वकथा' आदि पुस्तक में से देख लेना चाहिये।) इसप्रकार सम्यक्त्व के चौथे अंग का वर्णन किया।

卐 5. उपगूहन (उपबृंहण) अंग का वर्णन 卐

अपने गुणों की प्रशंसा न करना, दूसरे की निंदा न करना, साधर्मी में कोई दोष लग गया हो तो उसे ढंकना और उस दोष को दूर करने का प्रयत्न करना, तथा गुण की, धर्म की वृद्धि हो ऐसा उपाय करना—ऐसा भाव, सो सम्यग्दृष्टि का उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग है।

धर्मात्मा को ऐसी मार्दवभावना अर्थात् निर्मानता होती है कि, अपने गुण जगत में प्रसिद्ध हो और पूजा हो—ऐसी भावना उसे नहीं होती, तथा कोई साधर्मी के दोष प्रसिद्ध करके उसको हलका दिखाने की भावना नहीं होती; परंतु धर्म की वृद्धि कैसे हो, गुण की वृद्धि कैसे हो – यही भावना है। कोई अज्ञानी या अशक्त जन के द्वारा पवित्र रत्नत्रयधर्म में लांछन का प्रसंग हो जाये तो धर्मी उसको दूर करता है, धर्म की निंदा नहीं होने देता। दोषों को दूर करना और वीतरागी गुणों की वृद्धि करना, यह सम्यक्त्व का अंग है, अतः ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि के सहज होता है। जैसे माता को अपना पुत्र प्यारा है। अतः वह उसकी निंदा सह नहीं सकती, इसलिये उसके दोष छिपाकर गुण प्रगट करना चाहती है, वैसे धर्मी को अपना रत्नत्रयधर्म प्यारा है। अतः रत्नत्रयमार्ग की निंदा को वह सह नहीं सकता, इसलिये वह ऐसा उपाय करता है कि जिससे धर्म की निंदा दूर हो और धर्म की महिमा प्रसिद्ध हो। दोष को ढँकना–दूर करना और गुण को बढ़ाना, ये दोनों बात इस पाँचवें अंग में आ जाती है। अतः इसे उपगूहन अथवा उपबृंहण कहा जाता है।

धर्मात्मा निजगुण को ढाँकते हैं अर्थात् बाह्य में उसकी प्रसिद्धि की कामना नहीं करते। मेरा काम मेरे आत्मा में हो रहा है, वह दूसरे को दिखाने का क्या प्रयोजन है ? दूसरे लोग मेरे गुण को जाने तो अच्छा–ऐसी बुद्धि धर्मी को नहीं होती। धर्मी अपने आत्मा में तो निजगुण की प्रसिद्धि (प्रगट अनुभूति) अवश्य करते हैं, अपने सम्यक्त्वादि गुणों को आप निःशंक जानते हैं; परंतु बाह्य में दूसरे लोगों के द्वारा अपने गुणों की प्रसिद्धि से मान–बड़ाई लेने की बुद्धि धर्मी को नहीं होती; एवं दूसरे धर्मात्माओं के दोषों को प्रसिद्ध करके उनको निंदा करने का या उनको हलका दिखाने का भाव धर्मी को नहीं होता परंतु उनके सम्यक्त्वादि गुणों को मुख्य करके उनकी प्रशंसा करते हैं; इसप्रकार गुण की प्रीति से वे अपने में गुण की वृद्धि करते हैं, और अवगुण को ढंकते हैं तथा प्रयत्नपूर्वक उन्हें दूर करने का उद्यम करते हैं।

धर्मी को अपने गुण इष्ट हैं और दोष इष्ट नहीं हैं। किसी अन्य धर्मात्मा में हीन शक्तिवश कोई दोष हो गया हो तो उसे प्रसिद्ध करके उसका तिरस्कार नहीं करते, परंतु युक्ति से उसके दोष दूर करता है; किंतु इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि मिथ्यादृष्टि चाहे जैसा कुमार्ग का प्रतिपादन करे तो भी उसकी भूल प्रसिद्ध न करे। मिथ्यामतों में तत्त्वों की विपरीतता कैसी है, मिथ्यादृष्टि लोग कैसी-कैसी भूल करते हैं, यह तो स्पष्ट दिखावें और सच्चा तत्त्व कैसा है, यह समझावें। यदि ऐसा न करे, कुमार्ग का खंडन न करे, सत्य मार्ग का स्थापन न करे तो जीव हित का मार्ग कैसे जाने? अतः सत्य-असत्य की पहचान कराना, उसमें किसी की निंदा का प्रयोजन नहीं है। जीव के हित के लिये सत्यमार्ग की प्रसिद्धि का व असत्य के निषेध का भाव तो धर्मी के आता है। जहाँ धर्मी की निंदा हो, देव-गुरु की निंदा हो—ऐसे प्रसंग धर्मात्मा से देखा नहीं जाता, वे अपनी शक्ति से उसे दूर करते हैं।

सभी धर्मात्माओं के उदयभाव समान नहीं होते; आत्मश्रद्धा सभी की समान हो परंतु उदयभाव तो भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। भूमिका के अनुसार क्रोध-मानादि दोष होते हो—किंतु उसकी मुख्यता करके धर्मात्मा की या जिनशासन की निंदा न होने दे; अरे, यह तो धर्मात्मा हैं, जिनेश्वरदेव के भक्त हैं, आत्मा का अनुभवी है, सम्यग्दृष्टि है, मोक्ष का साधक है- ऐसे गुणों को प्रधान करके, परिणाम में कोई मंदता हो गयी हो तो उस दोष को गौण कर देते हैं, धर्म की या धर्मात्मा की निंदा नहीं होने देते। अहा, यह तो पवित्र जैनमार्ग... अकेली वीतरागता का मार्ग; कोई अज्ञानीजन के निंदा करने से वह मलिन नहीं हो जाता। ऐसे मार्ग की श्रद्धा में सम्यग्दृष्टि जीव अत्यंत निष्कंप रहते हैं; तीक्ष्ण असिधार के समान उनकी श्रद्धा मिथ्यात्व की कुयुक्तियों का खंडन कर देती हैं, किसी भी युक्ति से उनकी श्रद्धा चलित नहीं होती। ऐसे मार्ग को जानकर जो धर्मी हुआ है - उस जीव में यदि कोई सूक्ष्म दोष हो जाये तो उसके उपगूहन की यह बात है। जहाँ गुण और दोष दोनों विद्यमान हो, वहाँ उसमें गुण की मुख्यता करके दोष को गौण करना, यह उपगूहन है। परंतु जिसकी पास सच्चा मार्ग है ही नहीं और मिथ्यामार्ग को ही जो धर्म मान रहे हैं, उनको तो जगत के हित के लिये प्रसिद्ध करें कि यह मार्ग असत्य है, दुःखदायक है, अतः उसका सेवन छोड़ो और परम सत्य वीतराग जैनमार्ग को जानकर उसका सेवन करो। धर्मात्मा अपने में जैसे रत्नत्रयधर्म की शुद्धि बढ़े, ऐसा उपाय करे। दुनिया से मुझे

कोई प्रयोजन नहीं, मुझे तो मेरे आत्मा की शुद्धता बढ़े और वीतरागता हो–यही प्रयोजन है,—ऐसी भावनापूर्वक धर्मात्मा अपने में धर्म की वृद्धि करते हैं। इसे उपबृंहणगुण कहते हैं।

धर्मी जानते हैं कि मेरा गुण मेरे में ही है; मेरी अनुभूति में मेरा आत्मा प्रसिद्ध हुआ है – इसको मैं स्वयं जानता हूँ; दुनिया को दिखाने का क्या काम है ? क्या दुनिया के मानने से मेरे गुण की शुद्धि बढ़ती है ? और दुनिया के न देखने से क्या मेरे गुण की शुद्धि रुकती है ?—नहीं। मेरा गुण तो मेरे में है। कोई धर्मात्मा के गुणों की जगत में सहज प्रसिद्धि हो, यह बात अलग है, परंतु धर्मी को तो अपने में ही तृप्ति है, दुनिया में सहज प्रसिद्धि हो यह बात अलग है, परंतु धर्मी को तो अपने में ही तृप्ति है, दुनिया में प्रसिद्धि की कोई दरकार नहीं है। दुनिया स्वीकार करे तभी मेरा गुण सच्चा, ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है और दुनिया स्वीकार न करे तो मेरे गुण को कोई नुकसान हो जाये—ऐसा भी नहीं है। मेरे गुण मैंने दुनियों के पास से तो नहीं लिये हैं, मेरे आत्मा में से ही गुण प्रगट किये हैं, अतः मेरे गुण में दुनियां की अपेक्षा मुझे नहीं।—इसप्रकार धर्मी जगत से उदास निजगुण में निःशंक वर्तते हैं।

धर्मात्मा को जातिस्मरणादि ज्ञान हो जाये, ज्ञान की शुद्धता के साथ अनेक लब्धियाँ भी प्रगटें, अनेक मुनिवरों को विशेष लब्धियाँ हो जाये, अवधि–मनःपर्ययज्ञान भी हो जाये, किंतु जगत को वह मालूम भी न हो, वे मुनि वगैरह अपने आप में आत्मा की साधना में मशगुल वर्तते हैं। अपनी पर्याय में अपने गुणों की प्रसिद्धि हुई (अनुभूति हुई), तब आत्मा स्वयं अपने आपसे ही संतुष्ट एवं तृप्त हो जाता है; अपने गुण के शांतरस को आप स्वयं ही वेदता है, वह दूसरे को दिखाने का क्या काम है ? और दूसरे जीव भी ऐसी अंतर्दृष्टि के बिना गुण को कैसे पहचानेंगे ? इसप्रकार धर्मी अपने गुणों को अपने में गुप्त रखता है; और अन्य साधर्मी के अवगुण भी गुप्त रखकर उन्हें दूर करने का उपाय करता है। भाई, किसी का अवगुण प्रसिद्ध हो, इससे तुझे क्या लाभ है ? और उसके अवगुण प्रसिद्ध न हो, उससे तुझे क्या नुकसान है ? जो करेगा, वह भोगेगा, अतः दूसरे के गुण–दोष का फल उसे ही है, उसमें तुझे क्या ? इसलिये समाज में जैसे धर्म की निन्दा न हो और प्रभावना हो, तथा गुणों में वृद्धि हो—उसप्रकार धर्मी प्रवर्तते हैं।

किसी भी तरह अपने में एवं पर में गुण की वृद्धि हो और दोष दूर हो, आत्मा का हित हो और धर्म की शोभा बढ़े—इसप्रकार धर्मी का प्रवर्तन होता है। कोई साधर्मीजन से कोई दोष

हो गया हो और अपने ध्यान में आ जाये तो उसको गुप्तरूप से बुलाकर धर्मात्मा प्रेम से समझाते हैं कि—देखो भाई! अपना जैनधर्म तो महान पवित्र है, महान भाग्य से अपने को ऐसा धर्म मिला है; उसमें तेरे से इतना दोष हो गया, परंतु इससे तुम घबड़ाना मत, तुम आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान में दृढ़ रहना। जिनमार्ग महा पवित्र है, अत्यंत भक्ति से उसकी आराधना करके तुम अपने सभी दोषों को छेद डालना;—इसप्रकार प्रेम से उसे धर्म का उत्साह बढ़ाकर उसके दोष दूर कराते हैं। दोषों के छिपाने में कहीं उसके दोषों को उत्तेजन देने का आशय नहीं है, परंतु तिरस्कार करने से तो वह जीव निरुत्साह हो आये और बाह्य में भी धर्म की निंदा हो—अतः ऐसा न होने देने का आशय है तथा गुण की प्रीति से शुद्धि की वृद्धि का हेतु है।—ऐसा धर्मी का उपगूहन तथा उपबृंहण अंग है। इस अंग के पालन में जिनेन्द्रभक्त एक सेठ की कथा पुराण में प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्व-कथा' आदि में से देख लेना। इसप्रकार सम्यक्त्व के पाँचवें अंग का वर्णन हुआ।

卐 6. स्थितिकरण-अंग का वर्णन 卐

किसी कषायवश, रोगादि की तीव्र वेदना के वश, कुसंग से, लोभ से या अन्य कोई प्रतिकूलता के प्रसंग में धर्मी जीव श्रद्धा से या चारित्र से डिग रहा हो या शिथिल हो रहा हो तो उसे प्रेमपूर्वक वैराग्य-उपदेश से या अन्य अनेक उपाय से धर्म में स्थिर करना, अपने आत्मा को भी धर्म में दृढ़ करना एवं अन्य साधर्मी को भी धर्म में दृढ़ करना, सो स्थितिकरण है। शरीर में कोई तीव्र रोग आ जाये, व्यापार में अचानक बड़ी नुकसानी हो जाये, स्त्री-पुत्रादि का मरण हो जाये, विषयों में मन चलित हो जाये, कोई तीव्र मान-अपमान का प्रसंग बने, उस समय अपने परिणाम को शिथिल होता देखकर धर्मात्मा शीघ्र ही ज्ञान-वैराग्य की भावना के बल से अपने आत्मा को धर्म में दृढ़ करे कि—अरे आत्मा! तेरे को यह क्या हुआ? ऐसा महा पवित्र रत्नत्रयधर्म पाकर ऐसी कायरता तुझे शोभा नहीं देती। तू कायर मत हो। अंतर में जो शुद्ध आत्मस्वरूप परम महिमावंत देखा है, उसकी बारंबार भावना कर। संसार के दुर्ध्यान से तो नरकादि के तीव्र दुःख तुमने अनंत बार भोगे, अतः अब उस दुर्ध्यान को छोड़ो और चैतन्य की भावना करो।—ऐसे अनेक प्रकार के धर्म चिंतन से अपने आत्मा को धर्म में स्थिर करे; तथा अन्य साधर्मीजनों को भी अपना ही समझकर सर्व प्रकार की सहायता से धर्म में स्थिर

करे;—ऐसा भाव धर्मात्मा को होता है। किसी को उपदेश के द्वारा धर्म में उत्साहित करे, किसी को धन से भी सहायता करे, किसी की तन से सेवा करे, किसी को धैर्य बंधावे, किसी को अध्यात्म की महान चर्चा सुनावे—ऐसे सर्व प्रकार से तन से-मन से-धन से-ज्ञान से धर्मात्मा की आपत्ति को दूर करके उसे धर्मी स्थिर करता है। अरे, ऐसा मनुष्य अवतार और ऐसा जैनधर्म अनंत काल में मिला, इस अवसर को यदि चूक जायेंगे तो फिर अनंत काल में ऐसा अवसर मिलना कठिन है। इस समय में जरा सी प्रतिकूलता के दु:ख से डरकर यदि धर्म की आराधना में चूक जाओगे तो फिर संसार भ्रमण में नरकादि का अनंत दु:ख भोगना पड़ेगा। नरकादि के तीव्र दु:खों के समक्ष यह प्रतिकूलता तो कुछ गिनती में नहीं है; अत: कायर होकर आर्त्त परिणाम न करो, वीर होकर धर्मध्यान में दृढ़ रहो। आर्तध्यान करने से तो और भी दु:ख बढ़ जायेगा। संसार में तो प्रतिकूलता होती ही है, अत: धैर्यपूर्वक धर्मध्यान में दृढ़ रहो। तुम तो मुमुक्षु हो, धर्म के जाननेवाले हो, ज्ञानवान हो; इस प्रसंग में दीन होकर धर्म से डिग जाना तुझे शोभा नहीं देता, अत: वीरतापूर्वक आत्मा को सम्यक्त्वादि की भावना में दृढ़ता से लगाओ। पहले अनेक महापुरुष पांडव, सीताजी इत्यादि हुए हैं। उन्हें स्मरण करके आत्मा को धर्म की आराधना में उत्साहित करो। अत: अपने एवं पर के आत्मा को संबोधन करके धर्म में स्थिर करते हैं, यह सम्यग्दृष्टि का स्थितिकरण-अंग है। प्रतिकूलता आने पर आप स्वयं धैर्य न छोड़े, और अन्य साधर्मी को भी घबराहट न होने दे—उन्हें भी धैर्य बंधावे। अरे, चाहे मरण भी आवे, या कितनी भी प्रतिकूलता आवे, परंतु मैं कभी अपने धर्म से चलायमान नहीं होऊँगा, आत्मा की आराधना को नहीं छोड़ूँगा—ऐसे नि:शंक दृढ़ परिणाम से धर्मी अपने आत्मा को धर्म में स्थिर रखते हैं। कोई भय दिखावे, लालच दे, तो भी वह धर्म से नहीं डिगते। जो मोक्ष के साधक हुए, उनके आत्म-परिणाम में ऐसी दृढ़ता होती है।

सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वादि निश्चयधर्म में जितनी स्थिरता हुई, उतना धर्म है, वह वीतरागभाव है; और दूसरे साधर्मी को धर्म में स्थिर करने का जो भाव, सो तो शुभराग है, वह धर्म नहीं है, किंतु धर्मी को धर्म प्रेम का ऐसा भाव आता है। श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण मुनि ने अपने मित्र को मुनिधर्म में स्थितिकरण किया था, उनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। वह 'सम्यक्त्व-कथा' में आप पढ़ सकेंगे। इसप्रकार स्थितिकरण नामक छठवें अंग का वर्णन किया।

[क्रमशः]

अतीन्द्रिय आनंद के मोतियों से गूँथी हुई

मंगल रत्नमाला

गुरुदेव की जन्मजयंती जैसे मंगल अवसर पर मुमुक्षुओं के हृदय में अनेक प्रकार की ऊर्मियाँ उछलती हैं कि किसप्रकार गुरुदेव का सन्मान करें? ...सुवर्ण से सन्मान करें, ...हीरों से करें, ...रत्नों से करें, परंतु गुरु-महिमा पूरी नहीं हो सकती। अत: उन हीरों-रत्नों से भी अधिक मूल्यवान ऐसे मोती—जो कि गुरुदेव ने ही हमें दिये हैं एवं जिनके प्रकाश में चैतन्य झलक रहा है—ऐसे 84 मोतियों की मंगल रत्नमाल गूँथकर गुरुदेव के जन्मोत्सव प्रसंग पर अर्पण की गई है। अतीन्द्रिय-ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंदरूपी धागे में गूँथी हुई यह आत्मसन्मुखता प्रेरक आनंदकारी रत्नमाला भव्य जीवों के लिये चैतन्यरत्न की दर्शक बनें.... (ब्र. ह. जैन)

1) जितभव ऐसे जिनभगवंतों को नमस्कार हो। (णमो जिणाणं जिदभवाणं)

2) चैतन्य सन्मुख होते ही धर्मी को परम अतीन्द्रिय आनंद का वेदन हुआ, तब अपने वेदन से ही जान लिया कि मेरे इस आनंद के वेदन में राग का आलंबन नहीं और किसी पर का भी आश्रय नहीं, तथापि मुझे मेरे आत्मा का ही आश्रय था।

3) पहले ज्ञानी के उपदेश श्रवण से एवं विचार से जो जाना था, अब वह अपने स्वसंवेदन से जाना; इसलिये श्रवण किये गये भावों का अब परिणमन हुआ।

4) हे जीव! दुनिया को भूलकर तू अपनी अतीन्द्रिय-चैतन्यगुफा में प्रवेश कर, जहाँ अकेला सुख ही सुख है; तेरा आत्मा सुख का ही धाम है।

5) राग में आकुलता है, उसमें आनंद नहीं; तथापि जो राग में आनंद मानते हैं, वे अतत् में तत्बुद्धि करते हैं; उनकी यह मिथ्याबुद्धि उन्हें पराश्रित परिणमन कराकर महान खेद उत्पन्न करनेवाली है।

6) ज्ञान उसको कहते हैं जिसके साथ आनंद की उत्पत्ति है। ज्ञान के साथ राग की उत्पत्ति नहीं होती। केवलज्ञान आनंद का ही धाम है, जिसमें अंशमात्र दु:ख या आकुलता नहीं।

7) ज्ञानस्वरूप आत्मा का जिनको अनुभव हुआ, ऐसा ज्ञानी आत्मा परभाव के कार्य को नहीं करता; ज्ञानी का कार्य और रागादि परभाव—उन दोनों में अत्यंत भिन्नता है।

8) मेरा आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है, ऐसा निर्णय करने की जिसे धुन लगी, उसके प्रयत्न का झुकाव स्वसन्मुख रहता है; राग की ओर उसका झुकाव नहीं रहता; राग से पराङ्मुख होकर उसकी चेतन-परिणति अंतर में समाती है।

9) ज्ञान के अचिंत्य महिमा का चिंतन संसार के सभी दु:खों को भुला देता है। चित्त की अत्यंत निश्चलता से ही ज्ञानस्वभाव की साधना की जाती है। चित्त की निश्चलता के बिना स्वानुभव नहीं होता।

10) आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद व अतीन्द्रिय ज्ञान है, वही उपादेय है—ऐसा निर्णय करने से सम्यक्त्व होता है। केवली भगवान के ज्ञान व आनंद का निर्णय करनेवाले को अपने में स्वसन्मुखता से उसका नमूना आ जाता है।

11) पूर्ण साध्य को पहचानकर, उस साध्य के स्वीकारपूर्वक साधकभाव वर्त रहा है। पूर्ण साध्य का स्वीकार करनेवाले ज्ञान ने रागादि बाधकभावों को अपने से भिन्न जाना। वह ज्ञान, रागादि परभावों से भिन्न होकर स्वभाव की ओर परिणमन करता हुआ साधक हुआ, आनंदरूप हुआ।

12) सम्यग्दृष्टि का ध्येय निजात्मा है, क्योंकि उसमें आनंद है। स्वतत्त्व के ध्येय से जो अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हुआ, वही सच्चा आनंद है। बाह्य विषयों में कहीं भी आनंद नहीं।

13) आनंद आत्मा का स्वभाव ही है; अत: जिस परिणाम में स्वभाव का आश्रय है, उसमें ही आनंद है। निमित्त में या विभाव में आनंद नहीं है, अत: जिस परिणाम में निमित्त का आश्रय हो, उसमें आनन्द नहीं होता।

14) दु:ख का कारण अज्ञान है, सम्यग्ज्ञान सुख का कारण है। जहाँ अज्ञान नष्ट हुआ, पूर्ण ज्ञान खिला, वहाँ पूर्ण सुख है।

15) स्वानुभवसन्मुख होकर जहाँ अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट हुआ, वहाँ इष्टरूप ऐसे परम आनंद की प्राप्ति हुई, और अनिष्ट दूर हुआ। अनिष्टरूप तो मोहभाव था, वह जब नष्ट हुआ, तब जगत का कोई परद्रव्य जीव का अनिष्ट करने को समर्थ नहीं है।

16) इष्ट का निधान आत्मा है, आनंद का भंडार आत्मा है। आत्मा जब अपनी निर्विघ्न ज्ञानशक्ति से विकसित हुआ, तब आनंद का भंडार खुल गया और संपूर्ण इष्ट की प्राप्ति हुई, सब विघ्न मिट गये।

17) आत्मा को प्रिय-अभीष्ट केवलज्ञान है; ऐसा केवलज्ञान स्वभाव जिन्हें प्रिय लगा, उन्हें जगत में अन्य कोई चीज़ प्रिय नहीं लगती। एक ज्ञानस्वभावी आत्मा ही प्रिय लगता है।

18) भाई! तेरे अतीन्द्रिय चैतन्यतत्त्व के अतिरिक्त किसी बाह्य इंद्रिय विषयों के सुख में वास्तव में सुख नहीं है, मात्र सुखाभास है। जिसप्रकार मरीचिका में वास्तविक जल नहीं होता; किंतु जल का मिथ्या आभास है, वैसे विषयों में सुख नहीं है, किंतु सुख का मिथ्या आभास है।

19) भाई! अतीन्द्रिय सुखस्वभाव की प्रतीत अभी भी हो सकती है, एवं उस सुख का आंशिक वेदन भी हो सकता है। अतीन्द्रिय सुख की बात सुनते ही मुमुक्षु का आत्मा उल्लसित हो जाता है कि वाह! ऐसा अद्‌भुत मेरा सुख है।

20) अरे जीव! तू प्रमोद कर.. उल्लास कर.. कि तेरा आत्मा स्वयमेव सुखरूप है; तेरे सुख के लिये जगत के कोई भी पदार्थ की अपेक्षा नहीं है; स्वसन्मुख होने पर आत्मा स्वयं अपने अतीन्द्रिय आनंद में केलि करता है और मोक्षसुख का सुधापान करता है।

21) अंतर्दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आनंद अनुभव में आता है; वह आनंद अपने स्वभाव में से ही आता है, अन्यत्र कहीं से वह आनंद नहीं आता। पर विषय आत्मा के आनंद में अकिंचित्कर हैं।

22) जब स्वविषय में ज्ञान एकाग्र होता है, तब निर्विकल्प आनंद उल्लसित होता है। जब तक बाह्य विषयों के प्रति झुकाव रहता है, तब तक दु:ख ही है। यदि दु:ख न हो तो बाह्य विषयों की ओर क्यों दौड़े ?

23) अज्ञानी मानते हैं कि परविषयों की अनुकूलता में सुख है। ज्ञानी समझते हैं कि चैतन्य से बाह्य किसी भी परविषय के प्रति झुकाव होना, सो दु:ख है। सुख के सच्चे स्वरूप की पहचान अज्ञानी को नहीं है। सच्चे सुख में अन्य की अपेक्षा नहीं रहती, वह तो स्वयं आत्मा से ही होता है।

24) संयोग के बिना निजानंद के अनुभव में मुनिवरों को जो सुख है, वह सुख चक्रवर्ती के या इंद्र के वैभव में अंशमात्र नहीं है। इंद्रिय विषयों में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद की झाँक भी नहीं है।

25) प्रश्न – अज्ञानी को संयोग की अनुकूलता में सुख लगता है–वह कैसा है ?

उत्तर – वह अज्ञानी की मात्र कल्पना ही है। संयोग में कहीं सुख नहीं है, अज्ञानी मिथ्या कल्पना से ही अपने को सुखी मानते हैं।

26) उसीप्रकार सुख की तरह दु:ख भी संयोग में नहीं है। शरीर का छेदन होना, रोग होना, निर्धनता होना—ये कोई दु:ख नहीं है, दु:ख जीव की अपनी आकुलता में है। अपने अरतिभाव से दु:खी जीव कल्पना के द्वारा संयोग में दु:ख मानते हैं।

27) क्या अनुकूल संयोग मिलने से सुख मिलता है ? ...ना। क्या प्रतिकूल संयोग टलने से दु:ख टलता है ? ...ना। अंतर के अतीन्द्रिय स्वभाव में जा... तो सुख मिले। बाह्य विषयों का आलंबन छोड़.. तो दु:ख मिटे।

28) जिन्हें अपने अंतर में ही स्वाभाविक सुख प्राप्त हुआ है, वे सुख के लिये उपयोग को बाहर में क्यों भटकायेंगे ? विषयों से अत्यंत निरपेक्ष ऐसे स्वोत्पन्न आत्मिक सुख का जब वेदन हुआ, तब विषयों में सुख की कल्पना स्वप्न में भी नहीं होती।

29) जैसे मरीचिका को जल समझकर हिरण उस ओर दौड़ता है, परंतु वह उसकी

भ्रमणा है; वहाँ सच्चा जल नहीं है और उससे उसकी तृष्णा तृप्त नहीं होगी। अपितु आकुलता से वे दु:खी होगा; वैसे बाह्य विषयों में सुख मानकर अज्ञानी उपयोग को उस तरफ घुमाते हैं, परंतु यह उनकी भ्रमणा ही है; वहाँ सच्चा सुख नहीं है। विषयों के प्रति आकुलता के वेग से वे दु:खी ही होते हैं।

30) अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेता हुआ चैतन्य भगवान जब जागृत हुए, तब इन्द्रियाँ एवं इन्द्रिय विषय जड़-मृतक जैसे प्रतीत होते हैं। जैसे मुर्दे में सुख नहीं; वैसे मृतक-अचेतन इंद्रियों में सुख नहीं।

31) सिद्धभगवान परम सुखी हैं; उन्हें इंद्रिय या इंद्रियविषयों का अभाव है, उसी तरह सभी जीवों के भी इंद्रिय व इंद्रियविषयों के बिना ही सुख है, उन्हें बाह्य विषय सुख का साधन नहीं। ऐसे स्वभावसुख का निर्णय करना ही सम्यक्त्व है।

32) आत्मा को अपनी पर्याय में ही व्यापकता है, पर में व्यापकता नहीं। धर्मी जीव अपनी निर्मल पर्याय को करते हुए उसी में व्याप्त होते हैं; परंतु मिथ्यात्वादि कर्म का जो व्यय होता है, उसको वे नहीं करते। इसप्रकार जगत के सभी जीव अपने परिणाम को ही करते हैं, जड़ कर्म को करते नहीं।

33) अज्ञानी जिन परविषयों में सुख मानते हैं, उनमें कुछ सुख नहीं; उसीप्रकार जो सुख के कारण भी नहीं होते। अज्ञानी कल्पना से ही मानते हैं कि 'इनमें मेरा सुख है और ये मेरे सुख के कारण हैं।' इसप्रकार अज्ञानी के कल्पित इंद्रियसुख का कारण भी परवस्तु नहीं है, तब फिर ज्ञानी के अतीन्द्रिय सुख की तो क्या बात?

34) अंतर्मुख लक्ष से होनेवाला कार्य बहिर्मुख कार्य से अत्यंत भिन्न है, यह बात हृदय में रुचे बिना अंतर्मुख-वृत्ति नहीं होती।

35) अहो, यह बात समझकर अपने अंतर में मग्न होओ; स्वयं अपना हित करने के लिये यह बात है।

36) निश्चयनय के विषयरूप शुद्धात्मा को भूलकर जो जीव व्यवहार के विषयरूप अशुद्धता को ही अपनाते हैं, वे जीव परद्रव्य में ही विमोहित हैं।

37) चैतन्यस्वरूप आत्मा को अपने स्वभावसन्मुख होने में, अर्थात् स्वानुभव करने में मन का भी अवलंब नहीं है। चिदानंदस्वरूप आत्मा मन के विषय से भी पार है। शुभराग में मन का अवलंबन है परंतु शुद्धता में मन का अवलंबन नहीं है।

38) सम्यग्दर्शन, वही शुद्धोपयोग है ?—ना; सधक को सम्यग्दर्शन सतत वर्तता है, शुद्धोपयोग कभी होता है। ऐसा नियम अवश्य है कि सम्यग्दर्शन प्रगट होने के समय में शुद्धोपयोग होता है। उसीप्रकार जहाँ शुद्धोपयोग हो, वहाँ सम्यग्दर्शन नियम से होता है; सम्यग्दर्शन हो लेकिन शुद्धोपयोग न हो—ऐसा भी होता है। सम्यग्दर्शन को शुद्धपरिणति कहते हैं, परंतु शुद्धोपयोग नहीं कहते।

39) मुमुक्षु को आराधना के प्रति परम उत्साह होता है। रत्नत्रय के आराधक जीवों के प्रति परम वात्सल्य एवं बहुमान होता है। जगत में आराधना से ऊँचा दूसरा कुछ नहीं है;—ऐसा जानकर हे जीव! अपने उपयोग को आराधना में लगाओ।

40) भगवान की वाणी में स्वाश्रय के पुरुषार्थ का उपदेश आया। भगवान स्वाश्रय के द्वारा अरिहंत हुए और उनकी वाणी में भी उसी मार्ग का उपदेश आया कि हे जीवो! अंतर्मुख होकर स्वभाव का आश्रय करो... यही एक मोक्ष का पंथ है।

41) आचार्यदेव प्रमोद से कहते हैं कि अहो! तीर्थंकरों ने जो दिखलाया और गणधरों ने जिसका अनुराग किया, ऐसा यह एक ही स्वाश्रित मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्ग को नमस्कार हो। हम भी ऐसे मोक्षमार्ग को साध रहे हैं।

42) अहो, उन भगवंतों को और उनके दिखलाये हुए स्वाश्रित मोक्षमार्ग को नमस्कार हो,—ऐसा कहकर स्वाश्रितमार्ग का प्रमोद प्रसिद्ध होता है।

43) भाई, पहले निर्णय तो कर कि ऐसा मोक्षमार्ग एक ही है, और कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। यदि मार्ग का निर्णय करेगा तो उस मार्ग पर चलेगा। निर्णय के बिना किस मार्ग पर चलेगा ?

44) मोह का क्षय करने का एक ही प्रकार है कि शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय करके आत्मा में एकाग्र होना। सभी तीर्थंकर इसी प्रकार से मोह का क्षय करके

परमात्मा हुए हैं और यह एक ही प्रकार का मार्ग उनकी वाणी में दर्शाया है। ऐसे मार्ग का निश्चय करके आचार्य कहते हैं कि अहो, ऐसे मार्ग को नमस्कार हो! तीर्थंकरों को नमस्कार हो।

45) मोक्षार्थी को स्वाश्रय का उमंग है, राग का उमंग नहीं। मोक्षार्थी जीव बंधभाव का उत्साह क्यों करे? उसका उत्साह स्वभाव की ओर ही है। स्वभाव की ओर उसका संवेग है और परभाव से उसकी परिणति निर्वेद को प्राप्त हुई है।

46) अपने को जो शुद्धोपयोग परिणति प्रगट हुई, उसका प्रमोद प्रसिद्ध करते हुए, जिनवाणी के प्रति भक्ति से कहते हैं कि वाह! ऐसा स्वरूप दर्शानेवाली जिनवाणी जयवंत वर्ते।—ऐसा शुद्धोपयोग जयवंत वर्ते।

47) मोक्षार्थी को एक ही मनोरथ है कि मेरा आत्मा शुद्धोपयोगरूप परिणमित हो। शुद्धोपयोग ही धर्म है; अतः आत्मा स्वयं धर्मरूप हो–यही मुमुक्षु का मनोरथ है। उस मनोरथ की सिद्धि अंतर्दृष्टि के द्वारा मोह का नाश करने से होती है।

48) चिदानंदस्वरूप में उपयोग लगाकर निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धपरिणति का होना, सो पारमेश्वरी प्रवृत्ति है। ऐसी पारमेश्वरी प्रवृत्ति से धर्मरूप परिणमित आत्मा निजस्वरूप में सदा अचल रहता है, और आनंद से परिपूर्ण अमृत सरिता में मग्न रहता है।

49) शांत शीतलधाम चिदानंदमूर्ति आत्मा परभावों से निवृत्तस्वरूप है। परभावों की प्रवृत्ति भगवान आत्मा नहीं। भगवान आत्मा की प्रवृत्ति (अनुभूति) परभावों से निवृत्तरूप है।

50) ज्ञानस्वभाव का निर्णय करके जिसने अपने ज्ञान में सर्वज्ञ का स्वीकार किया, उसने स्वोन्मुख होकर मोक्ष के साधने के लिये भगवान को अपना साथीदार बनाया। अहा! भगवान मेरे साथीदार... अब मैं भगवान को साथ में रखकर अप्रतिहत रूप से मोक्ष को साधूँगा।

51) परद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप परिणमन होना, वह

धर्मात्मा का परिणमन है। परद्रव्याश्रित राग, वह परमार्थ से धर्मात्मा का परिणमन नहीं, वह तो धर्मात्मा के लिये परज्ञेयरूप है।

52) स्वाश्रित ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप परिणमन से ही ज्ञानी पहचाना जाता है, वही ज्ञानी का चिह्न है। राग द्वारा ज्ञानी की पहिचान नहीं होती।

53) ज्ञान जब स्वोन्मुख होता है, तभी शांति और सुख मिलता है। इंद्रियविषय में मग्न ज्ञान सुख का कारण नहीं, तब फिर संयोग में या बाह्यविषयों में सुख हो, यह बात कैसी ? भाई ! तेरे चैतन्य में विषयातीत सुख भरा है—उसके सन्मुख देख।

54) समयसार-प्रवचनसारादि परमागमों के द्वारा संतों ने जगत को आनंद की भेंट दी है... भैया... ले... ले ! आचार्यदेव ने परमागमों में जो बात दिखायी है, उसे पहिचान से परम आनंद होता है।

55) आत्मा चैतन्यस्वरूप है, वह जड़ के काम कैसे करे ?—न करे।

और जड़ वस्तु आत्मा के सम्यक्त्वादि भाव को कैसे करे ?—न करे।

जड़ और चेतन दोनों के कार्य भिन्न हैं, वे एक-दूसरे का कर्ता नहीं हैं।

वाह, यह तो सबकी समझ में आ जाये ऐसी वीतराग-विज्ञान की बात है।

56) आराधना-प्राप्त जीवों का दर्शन व सत्समागम आराधना के प्रति उत्साह जागृत करता है। आराधना के प्रति उत्साहित जीव को आराधक संतों के प्रति परम भक्ति होती है।

57) अहा, ज्ञानी के अंतर में वैराग्य का स्रोत भरा है। उस वैराग्य के बल से जब उन्हें मुनिदशा व केवलज्ञान प्रगट होगा, तब उसे देखकर जगत के मुमुक्षु आनंद विभोर हो जायेंगे।

58) सम्यक्त्वादि आराधना की भावना करना, आराधना के प्रति उत्साह करना, आराधक जीवों के प्रति बहुमान करना इत्यादि सर्व उद्यम से आत्मा को आराधना में लगाना चाहिए।

59) अहो, धन्य है वीतरागता के साधक संतों के जीवन को ! जिनकी मुद्रा का दर्शन

भी आत्मार्थी को आत्मसाधना की प्रेरणा जागृत करता है। उनके जीवन का आदर्श ग्रहण करके हमें अपना आत्महित करना चाहिए।

60) आत्महित साधने का यह अमूल्य अवसर है, सब अवसर आ चुका है, उसमें आत्मचिंतन का प्रयत्न करो, प्रमाद छोड़... और शीघ्र आत्महित में आत्मा को जोड़।

61) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र किसके संग से होते हैं ? इंद्रिय-मन या देह के संग से वे नहीं होते; एक शुद्धोपयोगस्वरूप आत्मा के संग से ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं। अत: पर का संग छोड़... आत्मा का ही संग करना चाहिये।

62) चिदानंदतत्त्व एक को ही जो अनुसरता है, वह अन्य किसी को नहीं अनुसरता, तब प्राण उसका क्यों अनुसरण करेगा ? जब परिणति विशुद्ध तत्त्व में ही लीन हुई तब जड़ प्राणों की संतति उसको कैसी ?—नहीं लगेगी; संसार की संतति का उसे छेद हो जायेगा; उसको संसार में देहधारण नहीं होगा।

63) भाई ! तीन काल में जो तेरे से भिन्न नहीं होता, ऐसे चैतन्य-आनंदप्राण को तूने कभी नहीं पहचाना; और जड़ देहादि प्राण—जो कभी भी तेरे नहीं हुए, उन्हें तूने अपना माना; ऐसी विपरीत मान्यता से तूने तेरे ही प्राण का घात किया, इस कारण पौद्गलिक प्राणों की संतति हुई।

64) इन जड़ प्राणों के धारण छोड़ना हो और अशरीरी सिद्धपद का जीवन प्राप्त करना हो तो देहादि से अत्यंत भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में ही उपयोग एकाग्र करना चाहिए।

65) भाई, ऐसी अपूर्व दशा प्राप्त करने के लिये क्षण-क्षण पल-पल प्रत्येक पर्याय में सतत भेदज्ञान का अभ्यास होना चाहिए, उसी की धुन लगनी चाहिए।

66) मोक्ष के लिये कटिबद्ध होकर जो शिष्य आया है, वह विनयपूर्वक ज्ञानी की सेवा करके अंतर्मुख प्रयत्न के द्वारा प्रथम तो आत्मा को जानता है, उसकी श्रद्धा करता है कि ज्ञान से जो यह आत्मअनुभूति हो रही है, वही मैं हूँ, उसके बाद

उसी आत्मस्वरूप में लीन होकर आत्मा को साधता है। यह आत्मा को साधने की रीत है—'नान्यथा साध्यसिद्धि'

67) जिसे आत्मा की सच्ची लगन हो, उसे स्वभाव समझने के लिये इतनी तीव्रता होती है कि ज्ञानी के श्रीमुख से स्वभाव सुनते ही उसका ग्रहण करके अंतर में मग्न हो जाता है... आत्मा में परिणमित हो जाता है।

68) हे जीव! संतों की यह शिक्षा तू कहने मात्र न रखना, परंतु अपने भाव में झेलकर आत्मा में वैसा परिणमन करना।

69) जगत को कोलाहल छोड़कर स्वरूप का अभ्यास करना ही स्वरूप की प्राप्ति का उपाय है। हे भाई! तू छह महीने तक आत्मा की सच्ची लगन लगाकर प्रयत्न कर तो तेरे अंतर में तुझे आत्मा का अनुभव होगा ही होगा। अभी से तत्पर हो जा।

70) अंतर से जिज्ञासु होकर, रागादि से भिन्न चैतन्य के अनुभव का जिसको उत्साह जागृत हुआ है, उसका उल्लास वर्तमान में ही स्वोन्मुख की ओर जाता है; परभाव में से उसका वीर्योल्लास हट जाता है और स्वभाव की ओर झुककर आत्मा की साधना करता है।

71) अहो, तेरे मोक्ष का पंथ तेरे अंतर में है। तेरा साधन व साध्य सब तेरे अंतर में ही समाते हैं; अन्यत्र कहीं देखने का काम नहीं है। तेरा स्वभाव निरालंबी है, अतः उपयोग को अंतर में जोड़ और परालंबन की बुद्धि छोड़।

72) प्रवचनसार में अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रिय आनंद का जो महिमावंत वर्णन कुंदकुंदाचार्यदेव ने किया है, उसके प्रति अत्यंत प्रमोद व बहुमान से स्वामीजी कहते हैं कि—वाह! कुंदकुंद तो कुंदकुंद ही हैं। स्वालंबीज्ञान का अद्भुत मार्ग सीमंधर परमात्मा के समवसरण में से लाकर उन्होंने भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को दिया है।

73) अहा, ऐसा उत्तम अवसर मिला... संतों के अतीन्द्रिय आनंद की बात सुनी; उसे सुनकर मुमुक्षु को उसका उल्लास आता है। अरे, ऐसे ज्ञान-आनंद की भावना भाने से देह दुःख का वेदन दूर हो जाता है और परिणाम जगत से उदास होकर

चैतन्य की ओर झुकता है। पूर्ण साध्य के स्वीकार होने पर साधकभाव का प्रारंभ हो जाता है।

74) भाई, पूर्ण साध्य ऐसा केवलज्ञान कि जो परम अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर्ण है, उसे तू बहुमान के साथ निर्णय में ले। ऐसे पूर्ण साध्य की प्रतीत करते ही समस्त संसार की महिमा उड़ जायेगी, और आत्माधीन आनंदकारी मोक्षमार्ग तुझे प्रगट होगा।

75) जिनके दिव्यज्ञान और आनंद निर्विघ्नतया खिले हैं, ऐसे भगवान अरिहंत के आत्मा की पहचान करने से आत्मा का अचिंत्य सामर्थ्य प्रतीत में आ जाता है, उसे ज्ञान का स्वाद आता है और सम्यग्दर्शन होता है। तब वह जीव केवली भगवान के ज्ञान व आनंद का परम आस्वादन करता हुआ मोक्ष के पंथ में गमन करता है।

76) आत्मा के महा आनंद का लाभ, सो मोक्ष है; आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप है, उसमें अंतर्मुख होकर पर्याय में आनंद का होना अर्थात् आनंद का साक्षात् वेदन होना, वही महा आनंद का लाभ है, वही साक्षात् मोक्ष है, वही मुमुक्षु का कर्तव्य है।

77) मोक्ष प्राप्त हुए भगवंतों ने भव्य जीवों से ऐसा कहा है कि शुद्ध रत्नत्रय-परिणत आत्मा ही स्वयं अभेदरूप से मोक्षमार्ग है, उससे भिन्न कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। जिसने अंतर्मुख होकर ऐसे सुंदर मार्ग को प्राप्त किया, वह जीव अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करेगा और फिर कभी माता के उदर में अवतार धारण नहीं करेगा।

78) अहा, मोक्ष और उसका मार्ग, दोनों अतीन्द्रिय आनंदरूप हैं। आनंद का वेदन करते-करते मोक्ष होता है, उसमें कष्ट नहीं—दुःख नहीं। सम्यग्दर्शन में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद का एक अंश अनुभव में आया, उस आनंद के समक्ष तीन लोक का इंद्रिय वैभव भी सर्वथा निःसार है। चैतन्य-सुख के अंश के पास इंद्रपद की विभूति का भी कोई मूल्य नहीं है, तब फिर मुनिदशा में वीतरागी

चारित्र के महा आनंद की क्या बात ? ऐसे आनंदरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणति वह मोक्षरूप महा आनंद का उपाय है। आत्मा का स्वभाव ही आनंदमय है, वह स्वयं आनंदरूप प्रगट होता है।

79) अरे, ऐसे महा आनंद का लाभ लेने की भावना किसे न हो ? आत्मा के परम आनंद में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसा निरपेक्ष आनंदमार्ग दिखाकर संतों ने अपूर्व करुणा की है। अरे जीव ! एक बार जिज्ञासापूर्वक अंदर देखने को तो आ।

80) वीतराग संत जिसकी प्रशंसा करते हैं, वह तत्त्व अंतर में कैसा है ! ऐसा आश्चर्य करके तत्त्व को एकबार देखो तो सही ! उसको देखते ही महा आनंद होगा। आत्मा के दर्शन से तुझे इतनी शांति होगी कि जिसमें संसार के दु:खों की गंध भी नहीं रहेगी। अरे जीव ! एक बार स्वानुभूति से चैतन्य का निर्विकल्प रस पीओ। उसमें जीवन का वास्तविक आनंद है।

81) अनुपचार-अभेद रत्नत्रयपरिणतिस्वरूप आत्मा वह वास्तविक मोक्ष का मार्ग है और वह महा आनंद के लाभरूप मोक्ष को प्राप्त होता है, वीतराग मार्ग में भगवंतों ने अभेद रत्नत्रयरूप सुंदर आनंदमार्ग प्रकाशित किया है। अहो, आत्मा प्रसन्न होकर रत्नत्रय से खिल उठे, ऐसा सुंदर मार्ग है।

82) एक बार विश्वास तो कर कि मैं अपने ही ज्ञान से अपने को जानूँ—ऐसा मेरा स्वभाव है; राग से जानने में आऊँ, ऐसा मैं नहीं हूँ। स्वभाव को प्रत्यक्ष करने की शक्ति मेरे ज्ञान में है—राग में नहीं। राग के बिना अंतर्मुख ज्ञान द्वारा मैं स्वभाव को आनंद से प्रत्यक्ष करके मैं अनंत सिद्ध भगवंतों की पंक्ति में बैठा हूँ—इसप्रकार चैतन्यप्रभु की आराधना करनेवाले को चौरासी लाख के चक्कर में भ्रमण नहीं होता। जो आत्मा स्वयं ही आनंदरूप हो गया उसे अब दु:ख कैसा ? और भवभ्रमण कैसा ? वह तो आनंद का वेदन करता हुआ महा आनंद के मार्ग में ही चल रहा है। वीतरागमार्ग में वह निर्भय सिंह की तरह विचरण करता है।

83) परमानंदस्वरूप आत्मा को प्रकाशित करनेवाले परमागम ललित है–सुंदर है–आनंद का कारण है। सहज आनंद की पुष्टि ही परमागम का सार है। ऐसा आनंददायी परमागम जयवंत वर्तता है... परमागम के द्वारा प्रसिद्ध किया गया आनंदमय आत्मा जयवंत वर्तता है।

84) अहो, तीर्थंकरदेव के दरबार में से आयी हुई यह बात है। सीमंधर परमात्मा के धर्म दरबार में जाकर कुंदकुंदाचार्यदेव यह बात लाये हैं और समयसारादि परमागमों के द्वारा जगत को उसकी भेंट दी है। भाई! तेरे स्वरूप की यह बात है। ऐसा स्वरूप को समझते ही महान आनंद सहित तेरा स्वकार्य सिद्ध हो जायेगा—ऐसा श्रीगुरु का आशीर्वाद है।

गुरु कहान–आशीष से हो गया भव से पार।
चौरासी के चक्कर में नहीं होगा अवतार॥

[गुजराती, आत्मधर्म, अंक-355, पृष्ठ 33 से 44 तक का हिन्दी अनुवाद]

जिनमार्ग अत्यंत सरल है

सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव के मार्ग का अनुसरण करने से जीव का उद्धार होता है, और वह जीव जन्म–मरण रहित अविनाशी सुख से परिपूर्ण अमर पद जो नित्य शक्तिरूप था, उसे प्रगटरूप में प्राप्त करता ही है। यह कोई क्लिष्ट मार्ग नहीं है; किंतु स्वभाविक होने से विवेकवान पुरुषों के लिये यह अत्यंत सरल है। हे जीव! अंतरात्मा के द्वारा उसका ग्रहण करके तू सन्मार्गी हो!

दिल्ली और कलकत्ता के प्रवचनों की प्रसादी

समयसार की गाथा 73-74 के ऊपर पूज्य स्वामीजी का मंगल प्रवचन कलकत्ता और दिल्ली में हुआ। अहा, आत्मा के मधुर शांति की बात किसे न रुचे? हजारों जिज्ञासु चैतन्यशांति की बात प्रेम से श्रवण करते थे। आत्मा आस्रवों से अर्थात् दुःख से कैसे मुक्त हो और अपने सुख की अनुभूति कैसे हो? उसकी विधि समझाते हुए कहा कि—

मैं एक शुद्ध ममत्व हीन रु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ।
इसमें रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ॥

अहा, मेरा आत्मा ज्ञानदर्शन की अनुभूतिस्वरूप है—इसप्रकार आत्मा के स्वभाव का निर्णय करके उसमें स्थित आत्मा स्वयं अपने चैतन्यस्वरूप में मग्न होकर समस्त क्रोधादि आस्रवों का त्याग कर देता है।—इसप्रकार आत्मा दुःख से मुक्त होता है।

अरे, अज्ञानवश चारगति के तीव्र दुःख जीव ने अनंत बार भोगे हैं; उन दुःखों के दावानल से आत्मा कैसे मुक्त हो और आत्मिक शांति का वेदन कैसे हो?—ऐसी जिज्ञासा का प्रश्न भी कोई विरला ही पूछता है। और ऐसे जीव को दुःख से छूटने की रीत इस समयसार में बतलायी गयी है। सीमंधर भगवान के समवसरण में जाकर श्री कुंदकुंददेव आत्मा के अनुभव की यह बात लाये हैं और भगवान के प्रतिनिधि के रूप में यह उच्च बात भरतक्षेत्र के जीवों को समयसार द्वारा आचार्यदेव ने दिया है।

हे जीव! प्रथम तू अपने आत्मस्वभाव का निर्णय कर। ज्ञानदर्शनमय चैतन्यभाव से भरपूर आत्मा स्वयं अपने स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष है, अखंड विज्ञानघन होने से एक है, कर्ता-कर्म आदि के भेद-विकल्पों से पार ऐसी निर्मल चैतन्य अनुभूतिस्वरूप है, इसलिये वह शुद्ध है, उसकी चेतना में क्रोधादि परभावों के किसी भी अंश का स्वामित्व नहीं है। जिसप्रकार आकाश एक स्वाधीन

निरालंबी अमूर्त वस्तु है, उसीप्रकार मैं चैतन्यस्वभाव से भरपूर्ण हूँ, स्वाधीन निरालंबी अमूर्त महान पदार्थ हूँ।—ऐसा अपने आत्मा का निश्चय करके उसी के अनुभव में परिणाम एकाग्र करने से आत्मा समस्त क्रोधादि परभावों से पृथक् हो जाता है... भगवान चैतन्यसमुद्र स्वयं अपने में स्थित होने पर विकल्प तरंगें नहीं रहती, अत: आस्रव भी छूट जाते हैं।

अहा, ऐसे चिदानंद आत्मा की बात प्रेम से श्रवण करना वह भी महा भाग्य है। पर की ओर के भावों में (अशुभ या शुभ में) जिसे दु:ख प्रतीत होता है और अंतर में सुखस्वभाव का वेदन करने के लिये जिसे उमंग जागृत हुई हो, ऐसे शिष्य को यह बात समझाते हैं। भाई, इस जड़ शरीर के रजकणों से तेरा चैतन्यतत्त्व तद्दन भिन्न है। अपने चैतन्य को भूलकर तूने अनंत दु:ख भोगे हैं। भुंड के बच्चे को बाँधकर अग्नि की भट्ठी में जीवित डाला जाये, तब उसे जो दु:ख हुआ, उससे भी अधिक अनंत गुना दु:ख इस संसार में अनंत बार तू भोग चुका है। रागादि भावों में कहीं तुझे शांति नहीं मिली, तो अब तेरा चैतन्यस्वरूप कि जो अशांति रहित है, दु:ख रहित है, छह कारक के भेद का विकल्प भी जिसमें नहीं समता, ज्ञान-दर्शन-सुख से परिपूर्ण है—उसे तू पहिचान, उसका निश्चय कर। अरे, जिसकी बात श्रवण करने से और जिसका निर्णय करने पर मुमुक्षु को आनंद प्रदान हो उसके साक्षात् अनुभव की क्या बात—भगवान आत्मा स्वयं अनुभूति का नाथ है। स्वयं अनुभूतिस्वरूप है। स्वयं अपनी अनुभूति के लिये बीच में विकल्प को करना पड़े, ऐसा उसका स्वरूप नहीं। विकल्पों से तो उसकी अनुभूति पार है—ऐसे आत्मा को पहिचानना ही अवतार की सफलता है। ऐसे आत्मा को अनुभव में लेने पर अनंत सुख प्रगट होता है और चौरासी लाख योनियों के परिभ्रमण का अंत आ जाता है। अहा, अनंत काल तक रहें, ऐसा महा आनंद, उसका उपाय भी ऐसा ही है और पुण्य-राग से उसका उपाय कहीं हाथ में नहीं आता। अपने अंतर के ज्ञानसमुद्र में डुबकी मार तो अपूर्व सुख प्रगट होगा, और दु:ख का अंत आ जायेगा। आत्मा का स्वभाव परम अद्भुत है। उसे लक्ष में लेने पर स्वयं को विश्वास हो जाता है कि बस, अब यह आत्मा संसार से विमुख हुआ है और मोक्ष को साध रहा है।

वैशाख शुक्ला दोज के प्रवचन में स्वामीजी ने कहा कि आत्मा का चिदानंद स्वभाव नित्य-ध्रुव-स्थिर है, और शुभाशुभ आस्रव अनित्य-अशरण-क्षणिक हैं। आत्मा का स्वभाव

दुःखरहित सुखमय है। और आस्रव तो दुःखरूप हैं; उनका फल भी दुःख ही होता है। दया के शुभराग या हिंसा के अशुभराग उन दोनों से पार विज्ञानघनस्वभाव आत्मा है।—उसी के लक्ष से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है। ज्ञान और आस्रव की भिन्नता का जिसे भान नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, और जन्म-मरण नहीं मिटता। सम्यग्दर्शन के बिना अनंत बार व्रत-तप-दया-दानादि करते हुए भी जीव रंचमात्र सुख को प्राप्त न हुआ और नही जन्म-मरण का अंत हुआ। भाई! अब आत्मा को पहिचानकर जन्म-मरण के चक्कर से छूटने का अवसर है।—सुखी होना हो तो इस बात को समझना अत्यंत आवश्यक है। भाई, अपने चैतन्यतत्त्व के अपार महिमा को एक बार उमंगपूर्वक सुन, सुनकर उसे लक्ष में ले, तो तुझे सर्व रागादि परभावों का रस छूट जायेगा; इसलिये आत्मा और आस्रवों का भेदज्ञान होकर आत्मा स्वयं ज्ञान-आनंदरूप हो जायेगा। ऐसा तुझसे हो सकता है, इसलिये भगवान और संतों ने ऐसा उपदेश दिया है।

भाई, ऐसी आत्मसाधना के लिये तू जगत की चिंता छोड़ दे। तुझे जगत चाहे जो कहे... लेकिन भगवान के मार्ग में तेरा स्वीकार हो गया है। तुझे फिर जगत का क्या काम! अपने आत्महित का कार्य हो गया हो, फिर जगत की निंदा-प्रशंसा के समक्ष क्या देखना। जगत चाहे जैसा कहे, परंतु अपना हित कर लेने की यह बात है।

एक ओर आत्मा के ज्ञानस्वभाव की अपूर्व शांति, और दूसरी और दुःखमय आस्रव—उन दोनों का अत्यंत भिन्नपना एक दृष्टांत द्वारा स्वामीजी समझाते हैं। भाई! चौरासी के भवचक्र में भ्रमण करते हुए तूने अनंत दुःख का वेदन किया, लेकिन तेरा ज्ञानानंद स्वभाव अपूर्व सुख से भरपूर्ण है, उसे पहचानने का अवकाश एक क्षण भी तुझे नहीं मिला।—धर्म के नाम से शुभराग में रुका रहा। लेकिन तेरा स्वरूप राग से पार चैतन्यभावस्वरूप है, उसे कभी तूने लक्ष में नहीं लिया। अब तुझे स्वरूप समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। भाई, ऐसे अवसर पर नहीं समझेगा तो कब समझेगा? भाई! तेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है—उसका निश्चय कर, तो तेरे भवचक्र का भ्रमण मिट जायेगा।

इसप्रकार 84वीं जन्मजयंती के प्रसंग पर चौरासी लाख के चक्कर से छूटने की रीत स्वामीजी के श्रीमुख से श्रवण करके सभी मुमुक्षु भाई-बहिन प्रसन्न होते थे... अहा गुरुदेव! हमें भवचक्र के चक्कर में से बाहर निकालकर मोक्ष के मार्ग पर ले जाने के लिये ही आपका अवतार है।●

परमागम की मधुर प्रसाद

[2]

[अहो, परमागम तो चैतन्य-अमृत का पान कराता है।]

समयसार के संवर अधिकार में ज्ञान और राग का सर्वथा भेदज्ञान और नियमसार के प्रथम अधिकार द्वारा जीवतत्त्व का परम उपादेयस्वरूप (कारणपरमात्मा) उसका अंतर्मुखी घोलन गुरुदेव के प्रवचनों में चल रहा है, उसका मधुर प्रसाद यहाँ दिया जा रहा है। गुरुदेव प्रमोद से कहते हैं कि अहो, यह तो केवली भगवान के पास से आई हुई श्रेष्ठ वस्तु है, हम तो उनके प्रतिनिधि के रूप में यह वस्तु दे रहे हैं। अहो, श्रीगुरु द्वारा प्राप्त हुआ जिनागम का वीतरागी, प्रसाद मुमुक्षु को आनंदित प्रदान करेगा...

संवर अधिकार के प्रारंभ में 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' इसप्रकार सिद्ध परमात्मा को नमस्काररूप मंगल किया है। संवर जीव की अपूर्व दशा है; उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा के सन्मुख होकर भेदज्ञान करने से संवर दशा प्रगट होता है, अर्थात् मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है; इसलिये ऐसा भेदज्ञान प्रशंसनीय है—अभिनंदनीय है।

धर्मी जानता है कि मैं उपयोगस्वरूप हूँ, मेरा आत्मा चैतन्य अधिकार है, इसलिये चैतन्यभाव ही मेरे आत्मा का आधार है। उपयोग के साथ ही मेरा आधार-आधेयपना है। राग के आधार से मेरा आत्मा नहीं और मेरा उपयोगस्वरूप आत्मा के आधार से राग की उत्पत्ति नहीं, अर्थात् रागादि के साथ मुझे आधार-आधेयपना नहीं है। इसप्रकार रागादि भावों के साथ और उपभोग के साथ सर्व रूप से अत्यंत भिन्नता है।

मेरे उपयोगस्वरूप की अनुभूति में रागादि भावों का अनुभव नहीं होता, क्योंकि वे भाव मेरे उपयोग से भिन्न हैं। जैसे दो द्रव्य भिन्न हैं, उनमें एकत्व नहीं; उसीप्रकार ज्ञान और राग भिन्न हैं, उनमें एकत्व नहीं है।

चैतन्य और क्रोध उन दोनों का एक-अधिकरण नहीं है। क्रोध के आधार से चैतन्य नहीं, और चैतन्य के आधार से क्रोध नहीं; अत: क्रोध को जाननेवाला मैं उस क्रोधस्वरूप नहीं, चैतन्यरूप ही हूँ। आचार्यदेव कहते हैं कि अहो, ऐसी भेदज्ञानरूप अनुभूति प्रशंसनीय है, वही संवर का परम उपाय है।

ज्ञान की क्रिया ज्ञप्तिरूप है—क्रोधादिरूप नहीं है, आत्मा ज्ञप्तिक्रिया का भी आधार हो और क्रोधादि क्रिया का भी आधार हो—ऐसा नहीं होता। आत्मा की ज्ञप्तिक्रिया में क्रोधादि नहीं तथा क्रोधादि में ज्ञप्तिक्रिया नहीं। अरे, ज्ञान में राग का अंश कैसे प्रवेश हो ? तथा राग में से ज्ञान की उत्पत्ति कैसे हो ? दोनों की जाति ही अत्यंत भिन्न है।

अहो, मेरा चैतन्यस्वभाव.. जगत से भिन्न... अद्‌भुत पदार्थ है। जगत का परमाणु या परमात्मा.. ये दोनों मेरे ज्ञान में ज्ञेयरूप ही हैं; दोनों मेरे ज्ञान से बाह्य हैं; परमात्मा को जानकर राग करे या परमाणु में दुर्गंध वगेरे को जानकर द्वेष करे—ऐसा ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ज्ञान तो राग-द्वेष रहित वीतरागमय है।

अहा, ज्ञान किसे कहा जाये; ज्ञान तो चैतन्यस्वादवाला है, चैतन्यरस के स्वाद में आत्मा के अनंत गुणों का अत्यंत मधुर स्वाद भरा हुआ है। ज्ञान शांतरसवाला है; वह ज्ञान किसी ज्ञेय को जानता हुआ अपने चैतन्य परिणाम के अतिरिक्त अन्य किसी रागादि भाव को किंचित् भी नहीं करता। ऐसा ज्ञान वह ज्ञानी का कार्य है। ज्ञानी का आत्मा ऐसे शुद्ध ज्ञान में ही है—उपयोग उपयोग में हैं। उपयोग में रागादि रंचमात्र भी नहीं।

भेदज्ञान द्वारा ज्ञानी को आत्मा के अनुभव में आनंद के सुप्रभात का उदय हुआ है। अहा, वीतरागमार्ग ! वह तो अलौकिक ही है न ! उसका फल भी अनंत काल तक अनंत आनंद की प्राप्ति ही है, ऐसे मार्ग का स्वरूप सुनकर अंतर में अनुभव करने के लिए यह अवसर प्राप्त हुआ है। ऐसे मार्ग को समझकर आत्मा में सुख प्रगट हो वही आत्मा का जीवन है। आत्मिकसुख रहित जीवन को कौन जीवन कहे ? भेदज्ञान द्वारा अंतर में राग से भिन्न आत्मानुभव द्वारा अतीन्द्रिय वास्तविक जीवन धर्मी को प्रगट हुआ है, वही सच्ची जीवन है। संवर अधिकार के प्रारंभ में आचार्यदेव ने ऐसे भेदज्ञान का अभिनंदन किया है (...भेदविज्ञानं अभिनंदति...)

नियमसार में आत्मा का परम स्वभाव दर्शाते हुये कहते हैं कि अहो, आत्मा के परम स्वभाव के महिमा की क्या बात? परमागम का मंथन करके संतों ने परम चैतन्यतत्त्व बाहर निकाला है, देव-गुरु-शास्त्र ने भी परम स्वभाव की महिमा गायी है।—ऐसे परमस्वभाव को अपने अन्तर में भेदज्ञानरूप तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा उसे उपादेय करके धर्मी जीव उसकी भावना भाते हैं। जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण हुई है-राग से भिन्न होकर अतीन्द्रियरूप परिणमित होकर अन्तर स्वभाव में प्रवेश कर गई है—उस जीव को उस तीक्ष्ण बुद्धि में अपना परम आत्मा की उपादेय है। रागबुद्धिवाला जीव ऐसे स्वभाव को उपादेय नहीं कर सकता।

अहो, मेरा परमात्म तत्त्व नित्य आनंदमयी है, शुद्धोपयोग द्वारा ही उसकी भावना होती है, शुद्धोपयोग द्वारा निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् भावना में लीन जीव को नियम से मोक्षमार्ग होता है, और उसे सदैव सुप्रभात है, अर्थात् आनंद की धारा निरंतर वर्तती है। अंतर में अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के बिना नूतन वर्ष अनंत बार मनाया, तथापि जीव दु:खी ही रहा। जहाँ तक ज्ञान प्रभात का उदय न हो और अज्ञान अंधकार नष्ट न हो, तब तक जीव सुखी नहीं होता। भाई, अंतर्मुख होकर चैतन्यतत्त्व की भावना करने से जिस आनंदमय सुप्रभात का उदय हुआ, वह ऐसा प्रारंभ हुआ कि अंध:काररूप दु:ख नहीं आयेगा और उसमें परमस्वभावी आत्मा को दृष्टि में लेकर उसकी भावना भाने से मोक्षमार्ग होता है, उसमें देव-गुरु-शास्त्र की वीतरागी आज्ञा है कि ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेकर जिसने भावना की, उसने मोक्षपुरी का मंगल कुंभ अपने में स्थापित किया।

सहज एक ज्ञायकस्वभावरूप जो निज परमतत्त्व, उसमें अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-लीनता से अभूतपूर्व सिद्ध दशा प्रगट होती है। इस अंतर्मुख भाव में कहीं भी राग का या पर का अवलंबन नहीं, मात्र स्वतत्त्व में ही उसका समावेश है।

भाई, यह तेरे अपूर्व हित की बात है, अंतरोन्मुख होकर जिसने आत्मानुभव किया, वह धर्मी समस्त जगत से तथा राग से उदास होकर अंतर में, भव दु:ख से छूटने के लिए मोक्षसुख की साधना करता है। हे जीव! अनंत काल के भव दु:ख से छूटकर चैतन्य की वास्तविक शांति प्राप्त करने हेतु तूं राग रहित परम चैतन्यतत्त्व का अनुभव कर। अनंत शुद्धता का पुँजरूप आत्मा उसकी अनुभवपूर्वक श्रद्धा करना; वह सम्यग्दर्शन है।

अरे जीव, तेरे तत्त्व की महिमा परम अद्भुत है; सिद्ध भगवान के समान तेरे आत्मा की

महिमा है। पुण्य से उसकी महिमा का ज्ञान नहीं होता, उसको गंभीरता और गहनता का ज्ञान स्वानुभव से ही होता है। चैतन्य के बाग में जहाँ अतीन्द्रिय आनंद के फुवारे उल्लसित होते हैं—उसमें प्रवेश करके आनंद धाम में अविचलरूप से धर्मी मोक्ष की साधना करता है। चैतन्य के परम अचिंत्य आनंद के समक्ष विषयों का वेदन उसे ज़हर जैसा लगता है। चैतन्य के परम अचिंत्य आनंद के समक्ष उसे दुनिया का प्रेम मिट जाता है, उसकी मधुर सम्यग्दृष्टि निःशंकरूप से ऐसी प्रतीत करती है कि त्रिकाल सहज स्वभाव में सहज ज्ञान-सहजदृष्टि-सहज चारित्र-सहज शुद्ध चेतना सदैव जयवंत वर्तती है। आत्मा की परम गंभीर महिमा जैसी है, वैसी ही संत बतलाते हैं। आत्मानुभव होने से परभाव भिन्न रह जाते हैं, शांति के अनुभव में वे एकमेक नहीं होते क्योंकि दोनों की जाति अत्यंत भिन्न है, उसके अंश भी भिन्न हैं, ऐसी अपूर्व आतमशांति का वेदन होना ही जिनवाणी के अभ्यास का फल है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा कथित परमागम आत्मा के शांत चैतन्यरस से ओतप्रोत है, भव्य जीवों के पीने योग्य अमृत परमागम में भरा है,—क्योंकि वह, रागादि से अत्यंत रहित परम निरपेक्ष चैतन्यतत्त्व को दर्शाता है, उस तत्त्व के सन्मुख होते ही आनंद की अमृतमय लहरें उठती हैं। उसमें निमित्तरूप ऐसी जिनवाणी को भी अमृत से भरी हुई कहा है। अहो, वीतरागी परमागम तो चैतन्यरस का घूँट पिलाता है।—लेकिन भावश्रुत द्वारा उसका रहस्य समझे, उसे ही चैतन्यरस का स्वाद आता है; मात्र शब्दों में से चैतन्यरस का स्वाद नहीं आता।

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान के बल से धर्मी जीव निःशंक हो गया है कि अब मैं अपने ज्ञान-श्रद्धा के बल से भवसागर को पार कर रहा हूँ। मधुर चैतन्यरस का स्वाद लेते-लेते मैं मोक्ष की साधना कर ही रहा हूँ। केवलज्ञान में ही निःशंकता न हो, ऐसा नहीं होता। साधक का मति-श्रुतज्ञान भी स्वानुभव द्वारा केवलज्ञान के समान ही निःशंक वर्तता है कि यह आत्मा धर्मी हुआ है और मोक्ष की साधना कर रहा है। इसप्रकार मति-श्रुतज्ञान की शक्ति भी कोई अचिंत्य-अद्भुत है। भले ही छद्मस्थ हो-गृहस्थ हो, किंतु उसके स्वसंवेदनरूप मति-श्रुतज्ञान में कितनी शक्ति है? उसकी लोगों को खबर नहीं है। परमात्मा की वाणी ऐसे अद्भुत चैतन्यस्वभाव को दर्शाती है कि जिसे जानते ही धर्मी जीव संसार को पार कर जाता है, उदय के तरंग उसे डुबा नहीं सकते, इसका ज्ञान तो सबसे ऊपर तैरता रहता है... विषमता के पर्वत उसे रोक नहीं सकते।

अहो, आत्मा के अमृत का पान करानेवाली वीतराग की वाणी का प्रवाहरूपी परमागम इस काल में भी विद्यमान है। वीतरागी संतों ने अपने अंतर शांतरस के समुद्र में डुबकी मारकर जिस चैतन्यरस का आस्वादन किया, उसे वाणी द्वारा जगत को दर्शाया; उसे समझकर मुमुक्षु जीव चैतन्य के वीतरागी अमृत का पान करते हैं। भगवान की वाणी समझे और उसे आत्मा का ज्ञान न हो, ऐसा नहीं होता। पात्र होकर भगवान की वाणी सुनकर स्वलक्ष्य करेगा ही और आत्मा के आनंद को प्राप्त करेगा ही। अहो, जिनवाणी विश्व के नवतत्त्वों का ज्ञान कराके जीव को मोक्ष की ओर ले जाती है, तथा चैतन्य के शांतरस का पान कराती है।

अरे जीव! परमागम में दर्शाये हुए ऐसे तेरे चैतन्यसागर में भरे हुए इस अमृत का एकबार पान तो कर! चैतन्य के आनंद का एकबार स्वाद तो ले। चैतन्य के अमृत की शांति के समक्ष राग तो तुझे अग्नि के समान लगेगा। अहो, अमृतमार्ग! उसकी बलिहारी है; उसमें राग का कोई क्लेश नहीं। वीतरागी शुद्धोपयोगपूर्वक सम्यग्दर्शन होने से आत्मा में ऐसे—अमृत का मार्ग का प्रारंभ होता है। ऐसा आनंदमयी मार्ग प्रगट हो, वह परमागम का फल है, शुभराग वह कहीं परमागम का फल नहीं। आत्मा में वीतरागता और आनंद प्रगट होता है, वही परमागम का फल है क्योंकि परमागम ने स्व-पर का भेदज्ञान करके स्वसन्मुख होने का कहा है—और ऐसा ही करने से परम आनंद मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, जिसने ऐसा मार्ग प्रगट किया, उसने ही वास्तव में परमागम को जाना है।

अहो, वीतरागी संतों ने ऐसे परमागम द्वारा हमें शुद्धात्मा का अनंत वैभव बतलाया है, उसे जानकर जो अमृत प्राप्त हुआ, उसकी क्या बात? जैसे मीठी पुरी घी से ओतप्रोत होती है; उसीप्रकार परमागम तो सर्वत्र वीतरागी चैतन्यरस से ओतप्रोत है, वह वीतरागरस से पूर्ण आत्मा का लक्ष कराता है, तथा पर से अत्यंत उदासीन कराके चैतन्य के आनंद का रसास्वादन कराता है।

[श्रीगुरु के प्रताप से ऐसा परमागम यहाँ सोनगढ़ के परमागम-मंदिर में उत्कीर्ण हुआ है... और भव्य जीव उसके भावों को आत्मा में उत्कीर्ण करके परम आनंद को प्राप्त करें...]

अहो! परमानंद की भेंट देनेवाला परमागम जयवंत वर्ते

[गुजराती आत्मधर्म, अंक 353, पृष्ठ 14 से 19 तक का हिन्दी अनुवाद]

श्री कुन्दप्रभु के साथ सिद्धालय में चलें...

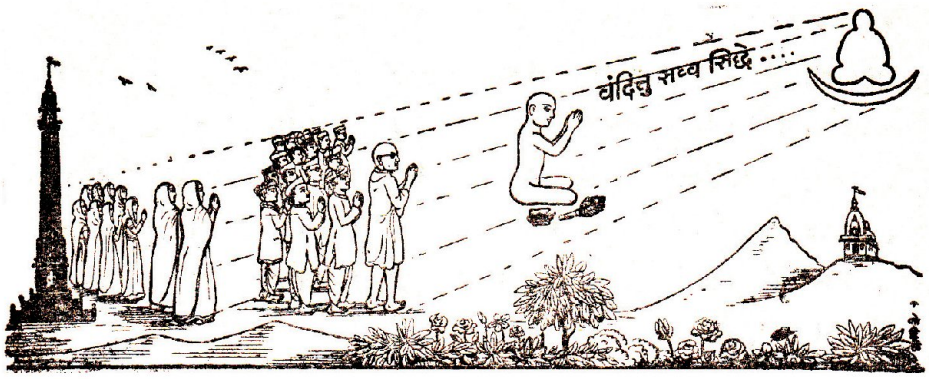

अनंत भगवंतों को आत्मा में विराजमान करके उनके जैसा साध्यरूप शुद्धात्मा के अनुभव द्वारा आराधकभाव का रस झरता हुआ अपूर्व मंगलाचरण करके, आचार्यदेव ने समयसार का आरंभ किया है।

समयसार की प्रथम गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि अहा सिद्ध भगवंत! पधारो.. पधारो.. पधारो.. मैं अपने ज्ञान में निर्विकल्प अनुभूति के द्वारा सिद्ध भगवंतों को आमंत्रित करता हूँ। जिस ज्ञानपर्याय में सिद्ध प्रभु विराजमान हुए, उस ज्ञानपर्याय में राग नहीं रहता। राग से पृथक् हुई मेरी ज्ञानपर्याय में इतना सामर्थ्य है कि जिसमें अनंत सिद्ध भगवंतों का समावेश करके मैं प्रतीत में लेता हूँ। अतीन्द्रिय आनंदरूप हुए अनंत सिद्धों को आमंत्रण करनेवाले साधक का आत्मा भी इतना महान होता है।—ऐसे आत्मा के लक्ष से समयसार का अपूर्व प्रारंभ होता है।

ऐसे समयसार का श्रोता भी अपूर्व भाव से श्रवण करता हुआ कहता है कि प्रभु! जिसप्रकार आपने स्वानुभूति के बल से सिद्धभगवान को आत्मा में स्थापन करके निजवैभव से शुद्धात्मा दिखलाया है, उसीप्रकार हम भी, अपने ज्ञान में सिद्धप्रभु को आमंत्रित करके, ज्ञान में से राग को पृथक् करके, स्वानुभूति के बल से, आपके द्वारा प्ररूपित शुद्धात्मा को प्रमाण करते हैं:—इसप्रकार गुरु-शिष्य की संधि के अपूर्व भाव से समयसार का श्रवण करते हैं।

[गुज० अंक 355, पृष्ठ 46 का हिन्दी अनुवाद]

परमागम की मधुर प्रसादी

मोक्ष का मार्ग शूरवीरों का मार्ग है

ज्ञानी शूरवीर होकर मोक्ष को साधते हैं।
ज्ञानी की दशा को ज्ञानी ही पहिचानते हैं॥
ज्ञानी की अद्‌भुत दशा को अज्ञानी कैसे जाने।
ज्ञानी के परिणाम उज्ज्वल होते हैं।

[समयसार, कलश 153-154 और गाथा 228 के प्रवचन से]

❀ सम्यग्दर्शन में आत्मा के चैतन्यसुख का वेदन है, ऐसे सुख का वेदन करनेवाले धर्मात्मा की ज्ञानदशा, शुभाशुभ सर्व परभावों से भिन्न है, इसलिये वह धर्मात्मा वास्तव में शुभाशुभ कर्म को नहीं करता और उसके फल को नहीं भोक्ता, इसलिये उसे निर्जरा होती है।

❀ अज्ञानी आत्मा के चैतन्यसुख को जानते नहीं, इसलिये शुभाशुभभाव करके उसके फल की इच्छा करते हैं। आत्मा के आनंद का अनुभव हुए बिना शुभाशुभ फल की इच्छा छूटती नहीं। शुभराग के फल में हमें सुख मिलेगा।—ऐसी तीव्र इच्छा अज्ञानी को होती है। इसलिये वह राग के फल से भिन्न नहीं रह सकता।

❀ अहा, चैतन्य की शुद्धता का पराक्रम जो करता है, ऐसे धर्मी जीव की क्रिया संसार के लिये अफल है। और जो अज्ञानी है, वह कदापि संसार में भाग्यवान-पुण्यवान हो तो भी उसकी शुभाशुभ क्रियायें संसार के लिए ही सफल हैं, उसके राग का फल संसार ही है, मोक्ष के लिये उसकी सर्व क्रियायें निष्फल हैं।

❀ प्रश्नः—ज्ञानी को रागादि कर्म तो होते हैं, तथापि ज्ञानी कर्म करते नहीं और उसके फल की अभिलाषा भी नहीं करते—ऐसा क्यों कहा?

उत्तरः—भाई, ज्ञानी क्या करते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। ज्ञानचेतनारूप परिणमित हुआ ज्ञानी, राग करता है—ऐसा तुझे अपनी अज्ञानदृष्टि से दिखायी देता है; उस समय राग से भिन्न ज्ञानचेतना ज्ञानी को वर्त रही है—उसे तू पहिचान नहीं सकता। धर्मी को ज्ञानचेतना तो अंतर के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद ग्रहण करनेवाली है, उस चेतना में राग कैसा? 'ज्ञानी' राग करते हैं—ऐसा हमें दिखायी नहीं देता, हमें तो ज्ञानी की ज्ञानचेतना राग से भिन्न ही दिखायी देती है।

❀ अहा, सम्यग्दर्शन होने पर अंतर में आनंद की तरंगें उल्लसित होती हैं। वह सम्यग्दृष्टि जीव क्या करता है-ज्ञान करता है या राग करता है? यह बात अज्ञानी नहीं पहिचान सकते। जिन्हें आनंदमय स्व-संवेदन से अंतर में अनंतगुण का वैभव प्रगट हुआ है... मुनि में तो सुंदर आनंदमय स्वसंवेदन वर्तता है, और सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में मुनि की अपेक्षा छोटा हो, तथापि उसे भी आत्मा के सुंदर अतीन्द्रिय आनंद के वेदनरूप स्वसंवेदन होता है, उन्हें भी आत्मा का वैभव प्रगट हुआ है। अरे, आत्मा के ऐसे आनंदमय वैभव में राग का कर्तृत्व कैसा? चैतन्य के वैभव में राग का कैसे समावेश हो? धर्मी के चैतन्यभाव में राग या कर्म तन्मयरूप नहीं, इसलिये धर्मी उसका कर्ता नहीं। धर्मी जीव की ऐसी दशा को वास्तव में ज्ञानी ही पहिचानते हैं। बाह्यभावों को

देखनेवाला बहिरात्मा, वह अंतरात्मा के भावों को कहाँ से जान सकता है ? अंतरात्मा की चेतना परभाव से भिन्न-भिन्न वर्तती है। अंतरात्मा की ऐसी दशा को बहिरात्मा नहीं जान सकता—यदि वह जान ले तो वह बहिरात्मा नहीं रहता।

❀ धर्मी को अवश्य ही, अपने पुरुषार्थ की गति कमजोर होने से, कुछ शुभाशुभ आ जाते हैं, लेकिन उस समय धर्मी अपने अकंप परम ज्ञानस्वभाव में ही स्थित रहता है, ज्ञानस्वभाव से पृथक् होकर उसकी ज्ञानपर्याय राग में तन्मय नहीं होती है, चैतन्य के स्वभाव की शांति का जो वेदन कर रहा है, उसे राग का कर्तृत्व कैसे हो ? शांति की शीतलता में उष्णता कैसे हो ? जिसप्रकार पाप के उदय से रोगादि प्रतिकूलता आ जाये, उसे संसारी जीव अच्छी नहीं मानते हैं, उसीप्रकार चैतन्य की शांति के वेदन में वर्तता हुए धर्मात्मा को बीच में शुभाशुभ राग या हर्ष-शोक आ जाते हैं, उन्हें वे दुःखरूप जैसे ही प्रतीत होते हैं, अपनी शांत-चेतना को धर्मी वेदनारूप करता नहीं, इसलिए धर्मी को शांत चेतना, वह कहीं रागादि का कर्तापना या हर्षादि का भोक्तापना किंचित् भी नहीं है। सम्यग्दर्शनादि अनंतगुणों में जो निर्मलभाव प्रगट हुए हैं, वे राग से मुक्त ही हैं; मुक्ति के सुख का प्रतिभास उसके वेदन में वर्त रहा है। अरे, ऐसे धर्मात्मा को जो रागादि का कर्तारूप देखते हैं-उन्हें धर्मात्मा का निर्णय करना नहीं आता।

❀ हम क्या कर रहे हैं, उसे दुनिया में दूसरे भी जाने या नहीं—वह संसार को बतलाने का क्या काम है, हम तो अपने आत्मा के लिए अंतर में कार्य करते हैं।—इसप्रकार धर्मात्मा जगत की अपेक्षा को छोड़कर अंतर में स्वयं अपनी ज्ञानचेतना के आनंद का वेदन करता है। दूसरे उसे पहिचाने या नहीं, अन्य पूजा करे या निंदा—वह अपनी आत्मशांति से भिन्न नहीं होता। दूसरों की बात छोड़कर शूरवीर होकर स्वयं अपने हित के मार्ग पर चला जाता है। अहो, यह तो भगवान होने का मार्ग है, तीर्थंकरों का मार्ग है।

हरिनो मारग छे शूरानो...
आत्मानो मारग छे शूरानो...

❀ समकिती भी शूरवीर होकर वीतरागमार्ग को साधते हैं—अरे! वीरप्रभु के मार्ग की साधना कहीं राग से होती होगी ? राग से लाभ मानना, वह तो कायर जीवों का कार्य है... धर्मी तो भेदज्ञान की शूरवीरता के द्वारा समस्त राग को ज्ञान से अत्यंत भिन्न करके,

शुद्ध उपयोग भावरूप ही अपना अनुभव करता है।—ऐसी शूरवीरता, वह भगवान का मार्ग है अर्थात् वही मोक्षमार्ग है।

❀ राग से पृथक् होकर शुद्ध चिदानंदस्वभावरूप स्वयं अपने को प्रगट अनुभूति में लेना—वह कहीं राग या विकल्प का मार्ग नहीं है। ज्ञानी ने शुद्धनय के महान पराक्रम द्वारा ज्ञान और राग की एकता को भेदकर भिन्न कर दिया है, और शुद्ध आत्मा के स्वसंवेदन से अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव किया है। अहो, ऐसे ज्ञानी की दशा को ज्ञानी ही पहिचानते हैं। ज्ञानी के अंतर में राग से भिन्न हुए अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप परिणाम को जानने का सामर्थ्य अज्ञानी में नहीं है। राग के समय राग से भिन्न वर्तती हुई ज्ञानचेतना को अज्ञानी पहिचान नहीं सकता; अज्ञानी को राग ही दृष्टिगोचर होता है, रागरहित अतीन्द्रिय भाव ज्ञानी में वर्तता है, उसे अज्ञानी देख नहीं सकता। सम्यग्दृष्टि के परिणाम ज्ञानचेतनामय होते हैं। इसलिये सम्यग्दृष्टि के परिणाम उज्ज्वल होते हैं।

❀ चैतन्य की अनुभूति के बल से धर्मात्मा-सम्यग्दृष्टि को ऐसा अद्भुत साहस-पराक्रम होता है कि जगत की चाहे जैसी प्रतिकूलता में भी वह चैतन्यमार्ग से चलायमान नहीं होता। वज्र आकर पड़े, तीन लोक में प्रलय हो जाये, तीव्र रोग का उदय शरीर में हो जाये, लाखों की धन-संपत्ति चली जाये, एक पैसा भी न रहे—तथापि वह धर्मी जीव अपने स्वभाव की श्रद्धा से निःशंकता से रंचमात्र भी चलायमान नहीं होता; उसे रंचमात्र भय नहीं होता कि ऐसी प्रतिकूलता के मध्य में मेरा स्वभाव नष्ट हो जायेगा। वह निःशंक और निर्भयरूप से अपने स्वभावरूप ही वर्तता है; उसमें कोई भय नहीं, राग नहीं, प्रतिकूलता नहीं। चैतन्य की शांति का जो वेदन प्रगट हुआ है, वह किसी भी प्रसंग से छूटता नहीं है।—सम्यग्दृष्टि की ऐसी अद्भुत दशा को कोई विरला ही पहिचानता है।

❀ द्वारकानगरी जल या शरीर जले, वहाँ सम्यग्दृष्टि जानता है कि मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है। मेरे चैतन्य के किसी भी प्रदेश पर उष्णता नहीं आती। जगत का कोई प्रतिकूल संयोग मेरे स्वभाव या मेरी श्रद्धा को, आनंद को नष्ट करने में समर्थ नहीं है, या जगत की कोई अनुकूलता मुझे लालच देकर मेरे स्वभाव से डिगाने में समर्थ नहीं है। उस समय होता हुआ राग-द्वेष भी धर्मात्मा की श्रद्धा को डिगाने में समर्थ नहीं, वह राग-द्वेष धर्मी की चेतना से बाहर और बाहर रहते हैं। ऐसे अखंड स्वभाव की श्रद्धा के साथ

अनंतगुण के शांतरस का वेदन धर्मी को निरंतर वर्तता है। उसकी दशा ज्ञानमय है, ज्ञान ही उसका शरीर है। अज्ञानी उसे कर नहीं सकता। ज्ञान को कोई हरण नहीं कर सकता। इसलिये ऐसे ज्ञानरूप ही अपने को अनुभव करता हुआ ज्ञानी-धर्मात्मा स्वभाव से ही नि:शंक और निर्भय होता है... अविनाशी ज्ञान-आनंदरूप ही अपना अनुभव करता हुआ वह मोक्ष के मार्ग में अचलरूप से-निर्भयरूप से चला जाता है, धर्मात्मा का ऐसा मार्ग है।—जिसके बीच में विघ्न नहीं, भय नहीं।

❀ परमागम मंदिर के शीतल वातावरण में समयसार गाथा 228वीं के प्रवचन में धर्मी जीव के अद्‌भुत दशा की महिमा समझाते हुए स्वामीजी ने कहा कि, धर्मी जानता है कि ज्ञायकभावस्वरूप ऐसा मैं आनंदमय अनुभूति का स्वामी हूँ। ऐसे ज्ञायकस्वभाव की अनुभूति में शंकादि सर्व परभावों का अभाव है। इसलिये सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा की अनुभूति शंकादि दोष से रहित है, वह तो ज्ञायकभावमय है। ऐसे ज्ञानमय भाव में कर्म बंध की ज्ञानी को शंका कैसी? ज्ञानभाव में बंधन कैसा? अहो, शुद्धात्मा की आनंदमय अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञानस्वभाव प्रगट हुआ, इसप्रकार अनंतगुणों की निर्मल अनुभूति का जो रस प्रगट हुआ, उसमें राग-द्वेष-मोहरूप किसी प्रकार का विभाव है ही नहीं, अर्थात् शंका नहीं; मेरा ज्ञानभाव रागरूप हो जायेगा या उसमें कर्मबंध हो जायेगा, या उसमें दु:ख-प्रतिकूलता आ जायेगी।—ऐसी किसी प्रकार की शंका धर्मात्मा को नहीं होती है। मेरा ज्ञानस्वरूप शाश्वत आनंदमय है, ऐसा वह नि:शंका जानता है। राग रहित चैतन्यवस्तु का अनुभव करे और रागादि बंधभाव अपने में होने की शंका भी करे।—ऐसा नहीं होता। धर्म का प्रारंभ हुआ कि वहाँ रागादि के साथ का संबंध टूट जाता है और परम ज्ञायकस्वभाव में ही एकता हो जाती है। ज्ञानस्वरूप आत्मा परभावों से रहित होने पर भी परभावों से संयुक्त प्रतिभासित होना—वह मिथ्याप्रतिभास अज्ञानियों के लिये भव का कारण है।—दु:ख का कारण है। परभाव होने पर भी धर्मी को शंका नहीं होती कि मेरा चेतनस्वभाव इस परभावरूप हो गया। वह तो अपने को चेतनभावरूप-आनंदभावरूप परभावों से भिन्न ही निरंतर देखता है—अनुभव करता है। ऐसी दशा के कारण धर्मी जीव सदैव नि:शंक और निर्भय होते हैं। *[गुजराती आत्मधर्म-355, पृष्ठ-28 से 32 का हिन्दी अनुवाद]*

दिल्ली-कलकत्ता-गोहाटी-बम्बई का प्रभावशाली प्रवास
भारत की महान नगरी कलकत्ता में मनाया गया

स्वामीजी की 84 वीं जन्मजयंति का उत्सव

तारीख 22-4-73 के दिन वाजित्र के मंगल स्वर के बीच सोनगढ़ से मंगल प्रस्थान करते हुए प्रात:काल स्वामीजी ने कहा कि ज्ञानस्वभावमय होकर अबंधभावरूप परिणमित हुए सम्यग्दृष्टि को नि:शंकता है; उसे बंध की शंका होती नहीं, बंधन भाव से वह छूट गया है, उसके सम्यक्त्व-ज्ञानादिभाव अबंध हैं, इसलिये मोक्ष के लिए वह नि:शंक है। गृह निर्माण कार्य जैसे अन्य बाह्य कार्य पूर्ण होंगे—कि नहीं? या कब पूर्ण होंगे—उसका संदेह होता है लेकिन सम्यग्दृष्टि को भेदज्ञान द्वारा अबंधभाव प्रगट हुआ है, इसलिये मोक्ष का महल बनाने एवं पूर्ण होने में उसे शंका नहीं होती। अहा, स्वभाव के अवलंबन से वह मोक्ष की साधन कर रहा है, अब वहाँ शंका कैसी?

अहा, ऐसे समय में भी जो जीव सम्यग्दर्शन की तीव्र आराधना करते हैं, वे जीव दो तीन भव में ही अपना कार्य पूर्ण करके मोक्ष को साध लेते हैं।

— ऐसे सम्यग्दृष्टि के आराधना की उत्तम महिमा का स्मरण करके स्वामीजी ने मंगल प्रस्थान किया, तब मंगल वाजित्र भी इस सम्यक्त्व के महिमा में अपना सुर मिलाते थे...

स्वामीजी एक दिन बम्बई में रुककर दूसरे दिन भारत की राजधानी दिल्ली शहर में पधारे। वहाँ चार दिवस का कार्यक्रम पूर्ण होने पर तारीख 27-4-73 के दिन स्वामीजी कलकत्ता पधारे। कलकत्ता अर्थात् भारत की सबसे बड़ी नगरी—वहाँ के मुमुक्षुओं ने आनंदपूर्वक भारत के महान संत का स्वागत किया। प्रथम दिन स्वामीजी बेलगछीया में रहे, वहाँ पार्श्वनाथ भगवान का सुंदर जिनमंदिर है, वहाँ के उपशांत वातावरण में स्वामीजी का अध्यात्म प्रवचन हुआ। जिसका श्रवण करते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि अहा, कलकत्ता शहर की ऐसी दौड़धूप के मध्य में भी चैतन्य शांति का ऐसा मधुर स्रोत प्रवाहित हो रहा है। ऐसा शांतरस का आस्वादन करनेवाले संत पधारे और उनका मंगल जन्मोत्सव हम प्रथम बार आनंदपूर्वक इस नगरी में मनायेंगे—ऐसी भावना से कलकत्ता के मुमुक्षु भाई-बहिन हर्ष विभोर होते थे।

दूसरे दिन प्रात:काल पूज्य स्वामीजी का भव्य स्वागत हुआ। चारों ओर सम्मेदशिखर-चंपापुरी-पावापुरी-राजगृही-खंडगिरि-उदयगिरि इत्यादि तीर्थों से सुसज्जित यह नगरी आज स्वयं तीर्थ जैसी प्रतीत होती थी... तीर्थंकरों के द्वारा प्ररूपित पवित्र मार्ग आज इस नगरी में प्रवाहित हो रहा था। स्वामीजी कलकत्ता के जिनमंदिरों का दर्शन करके प्रसन्न हुए थे। पार्क में नवनिर्मित हुए अत्यंत सुशोभित उन्नत मंडप में स्वामीजी पधारे और अद्‌भुत मंगल प्रवचन करके चैतन्य के सर्वोत्कृष्ट महिमा को प्रसिद्ध किया। अहो, चैतन्य की ऐसी अद्‌भुत महिमा सुनकर श्रोताजनों को श्रवण करानेवाले पूज्य स्वामीजी के प्रति प्रमोद जागृत होता था। सेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू, पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री, प्रमुख श्री नवनीतभाई जवेरी, श्री खेमचंदभाई, श्री बाबूभाई (फतेपुरवाले), सेठ श्री पूरनचंदजी गोदिका आदि जिज्ञासु भक्तजन जन्मजयंति के उत्सव में सम्मिलित होने के हेतु कलकत्ता पहुँचे।

समयसार की 73-74 वीं गाथा पर स्वामीजी का प्रवचन हुआ। मंडप में प्रतिदिन प्रात:काल वाजित्रों की ध्वनि होती थी। अनेक प्रकार के तोरण आदि से मंडप शोभायमान होता था और उसमें शुद्धात्मरस की गंगा श्रीगुरुमुख से निकलती थी, तब तो चैतन्य की अद्‌भुत शोभा में मुमुक्षु तल्लीन हो जाते थे। वैशाख शुक्ला दोज आयी और मंगल बधाई लाई। स्वामीजी का निवास सेठानी मनफूलाबेन वछराज (रतनलाल गंगवाल) के यहाँ था। अपने समक्ष स्वामीजी का जन्मोत्सव देखकर उन्हें अति उल्लास था और जन्म-जयंति की खुशी में श्रीमती मनफूलादेवी वछराज (हस्ते : रतनलाल तथा घमंडीलाल गंगवाल) की ओर से 201 × 84 की रकम घोषित करने में आयी थी। वैशाख शुक्ल दोज के प्रात:काल (-यहाँ सूर्योदय सौराष्ट्र से एक घंटे पहले होता है) चार बजे पूज्य स्वामीजी सुशोभित मंडप में पधारे। भक्तजन आनंद की मंगल बधाई लेकर उमड़ पड़े... प्रवचन के पश्चात् मुमुक्षु समाज की ओर से सेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू, प्रमुख श्री नवनीतभाई जवेरी आदि भक्तजनों ने अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। स्वामीजी को अभिनंदन-पत्र अर्पण किया गया तथा अभिनंदन संदेशों का प्रवाह चालू हो गया। पूज्य स्वामीजी की 84वीं जन्मजयंति के निमित्त से 84 वीं की रकमें एकत्र होने लगीं। सोनगढ़ में बन रहे परमागम मंदिर के लिये एक लाख का दान लिखाया गया। इसप्रकार कलकत्ता में आनंदपूर्वक जन्मजयंति मनायी गई और कलकत्ता मुमुक्षुओं ने हर्षोल्लास से उत्सव की शोभा में वृद्धि की।

तारीख 5-5-73 के दिन पूज्य स्वामीजी कलकत्ता से गौहाटी (आसाम) पधारे। मुमुक्षु भाई-बहिन स्वामीजी के साथ गगन-विहार करते हुए प्रसन्न होते थे... और निरालंबी तत्त्व की भावना जागृत होती थी... बंगलादेश के ऊपर से गुजरकर कुछ ही समय में गौहाटी पहुँचे... इस अंचल में स्वामीजी का प्रथम विहार होने से मुमुक्षु भाईयों ने उमंगपूर्वक भव्य स्वागत किया... और तीन दिन तक स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लिया... ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे चैतन्य का ब्रह्मोपदेश श्रवण करके मुमुक्षु प्रसन्न होते थे... इसके बाद स्वामीजी कलकत्ता होकर बम्बई पधारे... वहाँ मलाड़-घाटकोपर तथा दादर जिनमंदिरों के वार्षिक उत्सव मनाये गये... बम्बई के हजारों जिज्ञासु पूज्य स्वामीजी की जन्म-जयंति मनाते हो ऐसे उल्लासपूर्वक छह दिन तक प्रवचनों का लाभ लिया। इसप्रकार दिल्ली-कलकत्ता-गौहाटी-बम्बई का मंगल प्रवास पूर्ण करके स्वामीजी 14-5-73 के दिन सोनगढ़ पधारे। सोनगढ़ के नीरस वातावरण में फिर से जागृति आ गई। पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। सुबह और दोपहर के प्रवचन में चैतन्य का अध्यात्मरस प्रवाहित होने लगा है। सोनगढ़ के अत्यंत शांत वातावरण में, संतों की मधुर छाया में, चैतन्यरस की अलौकिक शीतलता अनुभव में आती है। अहा, चैतन्य की शीतलता के समक्ष सांसारिक ताप आ नहीं सकता। ऐसी शीतल-शांति का वेदन करनेवाले हे जीव! तुम सतत अभ्यास करो। यही गुरु की सेवा है, यही गुरु की आज्ञा है, और यही गुरु का सच्चा उत्सव है। गुरु तभी प्रसन्न होते हैं कि जब उनके बतलाये हुए भाव प्रगट करें। *[गुजराती आत्मधर्म, अंक 355, पृष्ठ 52 से 53 का हिन्दी अनुवाद]*

अनुभव

प्रश्न—अनुभव द्रव्य का है या पर्याय का है।

उत्तर—अनुभव तो पर्याय का है किंतु अनुभव में अकेला द्रव्य अथवा अकेली पर्याय नहीं, लेकिन स्वसन्मुख झुककर पर्याय द्रव्य के साथ तद्रूप हुई है, और द्रव्य-पर्याय के बीच भेद नहीं रहा—ऐसी जो दोनों की अभेद अनुभूति, वह अनुभव है। द्रव्य-गुण नित्य सामान्य है, वर्तमान व्यक्त पर्याय विशेष को अंतर्मुख करना है। अतः द्रव्य-पर्याय के बीच भेद रहे, वहाँ तक निर्विकल्प अनुभव नहीं होता।

परमागम का मंगल उत्सव

याद आती है गिरनार व अंकलेश्वर के महान श्रुत उत्सव की

गत वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन, सोनगढ़ में समयसारादि परमागमों को संगमरमर में मशीन द्वारा उत्कीर्ण करने की पूर्णता के उपलक्ष में आनंदोत्सव मनाया गया था। सोनगढ़ में करीब 16लाख के खर्च से जो परमागम मंदिर बन रहा है, वह पूर्ण होने की तैयारी में है। पंचमी के दिन दोनों प्रवचन परमागम मंदिर में हुए थे। सुबह में पूजन के बाद श्री कुन्दकुन्दस्वामी रचित पंचपरमेष्ठी जैसे पाँच-परमागम (समयसार-नियमसार-प्रवचनसार-पंचास्तिकाय-अष्टप्राभृत) गाजे-बाजे के साथ परमागम-मंदिर में विराजमान किये गये, बाद में अत्यंत उल्लासपूर्वक गुरुदेव का प्रवचन हुआ। जो थोड़ी गाथाओं का उत्कीर्ण कार्य शेष था, वह कार्य वैशाख कृष्णा सप्तमी के दिन पूर्ण हुआ। अहा, मानों कुन्दकुन्दप्रभु साक्षात् पधारकर अपने सुहस्त से ही परमागम की पूर्णता कर रहे हों—ऐसा भावपूर्ण प्रसंग था। परमागम की अद्भुत महिमा देखकर मुमुक्षुओं के नेत्रों में हर्षाश्रु आते थे। अहा, धन्य कुन्दकुन्द प्रभु के परमागम—कि जिन्होंने आत्मा का शुद्ध स्वरूप दिखाकर उसकी अनुभूति कराई है।

अहा, इन परमागमों में वीतरागी संतों का प्रसाद भरा हुआ है, वीतरागी संतों ने आत्मा के आनंद के अनुभव की मीठी प्रसादी इन परमागमों में भरकर भव्य जीवों के लिये दी है; वही आज स्वामीजी हमें दे रहे हैं... आओ, मेरे साधर्मीजनों! आओ.. वीतरागी संतों के आनंद की यह प्रसादी ग्रहण करो...

—००—

आज परमागम मंदिर में नियमसार की 50 वीं गाथा पर प्रवचन हो रहा है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार-नियमसार-प्रवचनसार-पंचास्तिकाय-अष्टप्राभृत—ये पाँच महान परमागमों की रचना करके आनंदस्वरूप आत्मा का अद्भुत वैभव दिखाया है। आत्मा को आनंद कैसे हो, उसकी यह बात है। अहा, आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद है, वह मंगल है।

ऐसे आत्मा की निजभावना के लिये मैंने परमागम की रचना की है—ऐसा श्री कुन्दकुन्द प्रभु ने नियमसार में कहा है। अतः मुमुक्षु श्रोताओं को भी परमागम के अभ्यास से स्वसन्मुख होकर निज आत्मा की भावना करना चाहिए।

स्वसन्मुख होकर धर्मी जीव ऐसा अनुभव करता है कि मैं शुद्ध अनुभूतिस्वरूप हूँ। मैं ध्रुवस्वरूप हूँ, और उसकी सन्मुख होकर जो आनंद की अनुभूति हुई—वह अनुभूतिस्वरूप भी मैं हूँ। आनंद का जो वेदन हुआ, वह आत्मा ही है।—ऐसे आत्मा का अनुभव धर्मी करते हैं।

अहा, दुनिया की विकथाओं से पार आत्मा के धर्म की कथा है। आत्मा के आनंदस्वभाव की ऐसी धर्मकथा कोई महान भाग्य से सुनने को मिलती है; और अंतर में लक्षगत करके उसकी अनुभूति होने पर जो आनंद होता है, उसकी तो बात क्या? शुद्धद्रव्य और उसमें अभेद शुद्धपर्याय—दोनों का ज्ञान उसमें आ जाता है। ऐसी अनुभूति में जो आनंद का वेदन हुआ, उस आनंद की अनुभूतिरूप आत्मा स्वयं है, इसलिये आत्मा अनुभूतिस्वरूप ही है। ऐसी अनुभूति में अपना परम शुद्धस्वभाव ही उपादेय है। उस परम स्वभाव को उपादेय करने से, अर्थात् उसके सन्मुख होकर अनुभूति करने से आनंद के वेदन सहित जो निर्मल दशा प्रगट हुई, उसमें आत्मा अभेद होने से वह आत्मा ही है।

अहो, आज तो परमागम मंदिर में पंच परमेष्ठी जैसे पाँच परमागम पधारे... परमागम के अक्षर आरस में खुदे गये हैं, वे आत्मा का अक्षर-स्वभाव (जिसका कभी नाश नहीं होता ऐसा अक्षर-स्वभाव) दिखाते हैं; ऐसे 'अक्षर' को निर्मल ज्ञानशिला में टंकोत्कीर्ण करना—वह भाव परमागम की प्रतिष्ठा है। अहा, जिन परमागम की इतनी अद्भुत महिमा की जाती है, वे परमागम आत्मा की ही महिमा प्रसिद्ध करते हैं। अहा, ऐसा परम ज्ञायकस्वभाव—उसकी सन्मुखतारूप निजभावना महा आनंदरूप है और ऐसी निजभावना के लिये ही वीतरागी परमागमों की रचना है। अंतर्मुख होकर जिन्होंने निजस्वभाव को उपादेय किया, वे ही परमागम के सार को समझते हैं; उन्होंने भव के अभाव का रास्ता ले लिया। अरे! एकबार ऐसे स्वभाव की महिमा समझकर उसकी भावना तो करो! तो भव का अंत आ जायेगा।

अहा, शुद्धात्मा को दिखानेवाले परमागम का महोत्सव है। परमागम में जो बात दिखायी है, उसे तू अपने आत्मा में उत्कीर्ण कर। दो हजार वर्ष पहले गिरनार में धरसेनस्वामी

ने षट्खंडागम का ज्ञान पुष्पदंत-भूतबलि मुनिवरों को दिया, वह जब समाप्त हुआ, तब देवों ने आकर उन श्रुतधर मुनिवरों का पूजन करके ज्ञान का बहुमान किया। बाद में, जब वह परमागम लिखकर पुस्तकारूढ़ किये गये, तब अंकलेश्वर में भी श्रुतज्ञान का बड़ा उत्सव चतुर्विध संघ ने किया। उस दिन पंचमी (ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी-श्रुतपंचमी) थी; आज भी पंचमी है, और यहाँ सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्यदेव के परमागमों का आरस में लिखने का कार्य अब पूर्ण हो रहा है। श्रुतज्ञान की पूजा का जो प्रसंग दो हजार वर्ष पहले (गिरनार व अंकलेश्वर में) हुआ, वह गुजरात में ही हुआ था, और आज यह परमागम का उत्सव भी गुजरात-सौराष्ट्र में ही हो रहा है। अहो! यह परमागम तो वीतरागी संतों की प्रसादी है। वीतरागी संतों ने आत्मा के आनंद के अनुभव का मीठा प्रसाद भव्य जीवों को परमागम में दिया है, वही आज यहाँ दिया जाता है। ऐसे आनंद का अनुभव, वही धर्म है, वही संतों का प्रसाद है, वही परमागम का सार है, और वही जिनभावना का शासन (जैनशासन) है।

आचार्यदेव कहते हैं कि अहो, सर्व विभाव गुण-पर्यायों से रहित शुद्ध अंतर तत्त्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। ऐसे स्वद्रव्य को देखकर, उसे उपादेय कर जो ज्ञान हुआ, वह परम आनंदसहित है। ऐसा अनुभूतिस्वरूप ज्ञान ही मैं हूँ—इसप्रकार धर्मी जीव अनुभूतिस्वरूप आत्मा का अनुभव करता है, यह बात प्रवचनसार की 172वीं गाथा में दिखलाया है; वे ही आचार्यदेव यहाँ कहते हैं कि शुद्ध अंतःतत्त्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है—उसमें एक-दूसरे का कोई विरोध नहीं है। एक धर्म शुद्ध अनुभूतिस्वरूप और एक धर्म शुद्ध द्रव्यरूप—ऐसे आत्मा के दोनों धर्म (दोनों स्वभाव, दोनों भाग) समझाकर आचार्यदेव ने उपादेयस्वरूप शुद्ध आत्मा दिखाया है। अहो, ऐसा शुद्धात्मा ही समयसार है। उसको उपादेय करने से नियम से मोक्ष के कारणरूप ऐसा शुद्धरत्नत्रय प्रगट हुआ, उसे नियमसार कहा जाता है। अंतर में निर्मल भावश्रुत में, और बाह्य में आरस की शिला में ऐसे समयसार-नियमसारादि वीतरागी परमागम उत्कीर्ण होने का यह मंगल उत्सव है।

अहा, आत्मा के परम स्वभाव के महिमा की क्या बात? परमागम समुद्र का मंथन कर-करके संतों ने परम अमृतमय चैतन्यतत्त्व निकाला है, देव-गुरु-शास्त्रों ने इस परम तत्त्व की अद्भुत महिमा गायी है। ऐसे परम तत्त्व को अपने अंतर में भेदज्ञानरूप तीक्ष्णबुद्धि से

उपादेय करके धर्मी जीव उसकी भावना करते हैं। जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण हुई है, अर्थात् राग से भिन्न होकर, अतीन्द्रिय होकर, अंतरस्वभाव में प्रवेश कर गयी है, उस जीव को अपनी तीक्ष्ण बुद्धि में अपना परम आत्मा ही उपादेय है। रागबुद्धिवाला जीव ऐसे स्वभाव को उपादेय नहीं कर सकता।

अहा, मेरे परमात्मतत्त्व में से सदैव आनंदरस झर रहा है; शुद्धोपयोग से ही उसकी भावना होती है। शुद्धोपयोग से निज परमात्मतत्त्व की सम्यक् भावना में तत्पर जीव को नियम से मोक्षमार्ग होता है, उसे सदैव सुप्रभात है अर्थात् आनंद की धारा वर्तती है। अंतर के अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के बिना बाह्य में नूतन वर्ष अनंत बार आया, फिर भी जीव दुःखी ही रहा। जब तक ज्ञानप्रभात नहीं ऊगता और अज्ञान अंधेरा नहीं मिटता, तब तक जीव सुखी नहीं होता। भाई, अंतर्मुख होकर तेरे चैतन्यतत्त्व की भावना कर। चैत्न्यभावना से आत्मा में जो आनंदमय नूतनवर्ष प्रारंभ हुआ, वह ऐसा बैठा कि फिर कभी अंधेरा नहीं होगा, दुःख नहीं होगा। ऐसे परम स्वभावी आत्मा को दृष्टि में लेकर उसकी भावना करके मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, उसमें देव-शास्त्र-गुरु की वीतरागी आज्ञा भी आ गई। जिसने ऐसी भावना की, उसने मोक्षपुरी के लिये मंगल कुंभ का स्थापन किया।

सहज एक ज्ञायकभावरूप जो अपना परम तत्त्व, उसमें अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-लीनता द्वारा अभूतपूर्व सिद्धदशा होती है। ऐसे अंतर्मुख भावों में कहीं भी राग का या पर का अवलंबन नहीं है, अकेले स्वतत्त्व में ही वे समाते हैं।

भाई, यह तेरे अपूर्व हित की बात है। अंतर्मुख होकर जिसने आत्मा को जान लिया है, वह धर्मी जीव समस्त जगत से उदास होकर, राग से भी उदास होकर, अंतर में भवदुःख से छूटने के लिये मोक्षसुख को साधता है। हे जीव! अनंतकाल के भवदुःख की भयंकर पीड़ा, उससे छूटने और चैतन्य की सच्ची शांति प्राप्त करने के लिये तू अपने अंतर में राग से रहित परम चैतन्यतत्त्व को देख। अनंत शुद्धता का भंडार अंतर में है, उसके वेदनसहित की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है।

अरे जीव! तेरे तत्त्व की महिमा परम अद्भुत है; सिद्धभगवान जैसी महिमा तेरे आत्मा में भरी है; पुण्य से उसका पार नहीं पा सकते। उसकी गंभीरता व गहनता का अंतर के

स्वानुभव से ही पा सकते हैं। चैतन्य-बाग में अतीन्द्रिय आनंद के फुव्वारे उछल रहे हैं—उसमें प्रविष्ट होकर, आनंदधाम में अविचल रहकर धर्मी जीव मोक्ष को साधते हैं। धर्मी जीव अतीन्द्रिय चैतन्यरस का रसिक हुआ है कि बाह्यविषयों के स्वाद में कहीं उसे चैन नहीं पड़ता; विषयों का वेदन तो उसे विष जैसा लगता है। चैतन्य के परम अचिंत्य आनंद के पास उसे संसार का प्रेम नहीं रहता। उसके अंतर की मोठी-मधुरी सम्यग्दृष्टि नि:शंक प्रतीत करती है कि मेरे त्रिकाल सहज स्वभाव में सहज ज्ञान-सहज दृष्टि और सहज चारित्र सदैव जयवंत वर्तता है—और सहज शुद्ध चेतना भी हमारे परमतत्त्व में सुस्थितरूप सदा जयवंत वर्तती है। अपने आत्मा में ऐसी सहज चेतना को हम सदैव जयवंत देखते हैं; उसमें कहीं रागादि परभाव जयवंत नहीं हैं। आत्मा की परम गंभीर महिमा जैसा है, वैसा संतों ने दिखलाया है। जो सत् 'है' उससे अधिक वे कुछ नहीं कहते। अहा, चैतन्य के महिमा का क्या कहना? अंतर के अनुभव के बिना उसके महिमा का पार नहीं पा सकते हैं। आत्मा का साक्षात् अनुभव होने पर परभाव सब भिन्न रह जाते हैं, चैतन्य की शांति के अनुभव में वे तन्मय-एकरूप नहीं होते क्योंकि उनकी जाति चैतन्य से सर्वथा भिन्न है, उनके अंश भिन्न हैं। ऐसी अपूर्व आत्मशांति का वेदन, वही जिनवाणी के सच्चे अभ्यास का फल है।

(वचनामृत वीतराग के... परम शांतरस मूल)

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा प्ररूपित परमागम आत्मा के शांत चैतन्यरस से भरपूर्ण है। भव्य जीवों को पीने योग्य अमृत परमागम में विद्यमान है;—क्योंकि परमागम रागादि से अत्यंत भिन्न परम निरपेक्ष चैतन्यतत्त्व दिखलाता है, उस तत्त्व के सन्मुख होते ही अंतर में आनंद की लहरें उल्लसित होती हैं। अत: उसके निमित्तरूप से जिनवाणी को भी अमृत से भरपूर्ण कहा है। अहा, वीतरागी परमागम तो चैतन्यरस का स्वाद चखाता है, लेकिन जो भावश्रुत द्वारा उसका रहस्य समझता है, उसे चैतन्य का स्वाद आता है। केवल शब्दों में से चैतन्यरस का स्वाद नहीं आता।

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हुए मति-श्रुतज्ञान के बल से धर्मी जीव नि:शंक हो गया कि अब मैं ज्ञान-श्रद्धा के बल से भवसागर पार कर रहा हूँ। मधुर चैतन्यरस का स्वाद ग्रहण करते-करते मेरा आत्मा मोक्ष को साध रहा है। केवलज्ञान में नि:शंकता होती है और श्रुतज्ञान में साधक को

नि:शंकता न हो—ऐसा नहीं होता है। साधक के मति-श्रुतज्ञान भी आत्मा के स्वानुभव द्वारा केवलज्ञान की तरह ही आत्मा में नि:शंक वर्तता है कि यह आत्मा धर्मी हुआ है और मोक्ष को साध रहा है, इस प्रकार मति-श्रुतज्ञान की शक्ति भी कोई अचिंत्य-अद्‌भुत है। तथापि छद्मस्थ-गृहस्थ हो, लेकिन उसके स्वसंवेदन मति-श्रुतज्ञान में कितनी शक्ति है, उसकी लोगों को खबर नहीं है। परमात्मा की वाणी ऐसा अद्‌भुत चैतन्यस्वभाव दिखलाती है कि जिस स्वभाव को जानते ही धर्मी जीव संसार से तर जाता है, उदय की तरंगें उसे डुबा नहीं सकती, उसका ज्ञान ऊपर तैरता ही रहता है... विषमता के पर्वत उसे रोक नहीं सकते।

अहा, आत्मा के अमृत का पान करानेवाली वीतराग की वाणी के प्रवाहरूप परमागम इस काल में भी विद्यमान है। वीतरागी संतों ने अंतर के शांतरस के समुद्र में मग्न होकर जो चैतन्यरस का स्वाद ग्रहण किया, वही जगत में वाणी द्वारा दर्शाया है, उसका श्रवण करके मुमुक्षु जीव चैतन्य के वीतरागी अमृत का पान करते हैं। भगवान की वाणी समझे और आत्मज्ञान न हो, ऐसा नहीं होता। जिसने पात्र होकर भगवान की वाणी का श्रवण किया, वह जीव स्वलक्ष करेगा ही और आत्मा के आनंद को प्राप्त करेगा। अहा, जिनवाणी विश्व के नव तत्त्वों का ज्ञान कराकर जीव को मोक्ष की ओर ले जाती है और चैतन्य के शांतरस का पान कराती है।

अरे जीव! परमागम में बतलाया हुआ चैतन्यसमुद्र जो कि अमृत से भरपूर्ण है, उसका एकबार स्वाद तो चख। चैतन्य के आनंद का एक बार स्वाद तो ग्रहण कर। चैतन्य के अमृत की शांति के समक्ष राग तुझे अग्नि के समान प्रतीत होगा। अहा, अमृतमार्ग! उसकी बलिहारी है; उसमें राग का कोई क्लेश नहीं। वीतरागी शुद्धोपयोगपूर्वक सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में ऐसा अमृतमार्ग का प्रारंभ होता है। आनंदमार्ग का प्रगट होना, वह परमागम का फल है। शुभराग वास्तव में वह कहीं परमागम का फल नहीं। आत्मा में वीतरागता और आनंद प्रगट हो, वही परमागम का फल है;—क्योंकि परमागम में स्व-पर का भेदज्ञान कराकर—स्वसन्मुख होने का कहा है—ऐसा करने से परम आनंद प्रगट हुआ, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। जिसने ऐसा मार्ग प्रगट किया, उसने ही वास्तव में परमागम को जाना है।

अहा, वीतरागी संतों ने परमागम के द्वारा हमें शुद्धात्मा बतलाया है... हमारे आत्मा का अनंत वैभव हमें दिखलाया। जिसे जानने पर जो अमृत की प्राप्ति हुई, उसकी क्या बात!

जिसप्रकार मीठी पूरी घी से भरपूर्ण होती है, उसीप्रकार परमागम सर्वत्र वीतरागी चैतन्यरस से भरपूर्ण है... वह वीतरागीरस से भरपूर्ण आत्मा लक्षगत करता है, और पर की ओर से परम वैराग्य कराकर चैतन्य के आनंद का स्वाद प्राप्त कराता है।

[श्रीगुरु के प्रताप से ऐसा परमागम सोनगढ़ के परमागम मंदिर में संगमरमर की शिलाओं पर उत्कीर्ण हो गया है.. और भव्य जीव उसके भाव को आत्मा में उत्कीर्ण कर परम आनंद को प्राप्त होते हैं। अहा, परमागम में से भर-भरकर आत्मा के परमानंद की भेंट देनेवाले वीतरागी संत जयवंत वर्तें....]

[गुजराती, आत्मधर्म अंक 355, पृष्ठ 2 से 8 तक का हिन्दी अनुवाद]

सम्यक्त्व की सुंदर बात

श्री समयसार की 144वीं गाथा अर्थात् सम्यग्दर्शन का मंत्र... मुमुक्षु को अत्यंत प्रिय ऐसी यह गाथा आत्मा का अनुभव करने की रीत बतलाती है। जिसके प्रवचन का सार यहाँ प्रश्नोत्तर शैली के रूप में प्रस्तुत किया है। बारंबार उसके भावों का गंभीर मनन मुमुक्षु जीव को चैतन्यगुफा में ले जायेगा... और चैतन्यरस का अत्यंत मधुर स्वाद प्रदान करेगा।

* प्रश्न-सम्यग्दर्शन करने के लिये प्रथम मुमुक्षु को क्या करना चाहिये ?

  उत्तर-मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा निश्चय करना चाहिये और अन्य समस्त रसों का त्याग कर ज्ञान के रस में मग्न होना चाहिए।

* ज्ञानस्वभाव का निर्णय किसके अवलंबन से होता है ?

  श्रुतज्ञान के अवलंबन से निर्णय होता है।

* इसका निर्णय करनेवाले का बल कहाँ है ?

  इसका निर्णय करनेवाला अभी सविकल्पदशा में है। परंतु उसका विकल्प के ऊपर

लक्ष नहीं, ज्ञानस्वभाव की ओर ही लक्ष है। ज्ञान का ही उसे रस है, विकल्प में उसे रस नहीं।

* आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि कब होती है ?

आत्मा के निश्चय के बल से निर्विकल्प होकर साक्षात् अनुभव करे तब।

* ऐसे अनुभव के लिये मतिज्ञान ने क्या किया ?

वह पर से विमुख होकर आत्मसन्मुख हुआ।

* श्रुतज्ञान ने क्या किया ?

प्रथम जो नयपक्ष के विकल्पों की आकुलता होती थी, उससे अपने चैतन्यस्वाद को भिन्न करके वह श्रुतज्ञान भी आत्मसन्मुख हुआ है, ऐसा करने से निर्विकल्प अनुभूति हुई, परम आनंद सहित सम्यग्दर्शन हुआ; भगवान आत्मा प्रसिद्ध हुआ, उसे धर्म हुआ और वह मोक्षमार्ग की ओर चला।

* आत्मा कैसा है ?

आत्मा ज्ञानस्वभाव ही है; ज्ञानस्वभाव में रागादि नहीं आते, ज्ञानस्वभाव में इंद्रिय या मन कर अवलंबन नहीं आता, इसलिये जहाँ मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा आत्मा का निर्णय किया, वहाँ श्रुत का लक्ष इंद्रियों से-मन से-राग से उन्मुख होकर ज्ञानस्वभाव की ओर झुकता है। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की ओर सन्मुख होने से जो प्रत्यक्ष साक्षात् निर्विकल्प अनुभव हुआ, वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही भगवान आत्मा की प्रसिद्धि है। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वह आत्मा की पर्याय है, वह कहीं आत्मा से भिन्न नहीं।

* ज्ञानस्वभाव के निर्णय द्वारा अनुभव होता है ?

हाँ, ज्ञानस्वभाव का सच्चा निर्णय जीव ने कभी किया नहीं। 'ज्ञान के द्वारा' (विकल्प द्वारा नहीं) सच्चा निर्णय करे तो अनुभव हुए बिना नहीं रहता। जिसके फल में अनुभव न हो, वह सच्चा निर्णय नहीं। विकल्प के समय मुमुक्षु का लक्ष उस विकल्प

की ओर नहीं होता लेकिन 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ'—ऐसा निर्णय करने की ओर उसका लक्ष होता है। और ऐसे ज्ञान के बल से आगे बढ़कर ज्ञान को अंतरोन्मुख करके अनुभव करने पर विकल्प टूट जाता है और ज्ञान का ज्ञानरूप परिणमन होता है। उसे आनंद कहो, सम्यग्दर्शन कहो, मोक्षमार्ग कहो, समय का सार कहो।—आत्मा का उसमें समावेश है।

* आत्मा का रस कैसा है ?

आत्मा का रस विज्ञानरूप है। धर्मी जीव विज्ञानरस का ही रसिक है। राग का रस, वह आत्मा का रस नहीं। राग का रस जिसे होता है, उसे आत्मा के विज्ञानरस का स्वाद अनुभव में नहीं आता। राग से भिन्न ऐसे वीतराग-विज्ञान रसरूप आत्मा स्वाद में आये, तभी सम्यग्दर्शन होता है। विज्ञानरस कहो या अतीन्द्रिय आनंद कहो, सम्यग्दर्शन में उसका स्वाद अनुभव होता है।

* मैं शुद्ध हूँ-ऐसा जो शुद्धनय का विकल्प-उसमें रुकना वह क्या है ?

वह मिथ्यादृष्टि का नयपक्ष है। सम्यग्दर्शन तो उस नयपक्ष से पार है। विकल्प की आकुलता के अनुभव में शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं। सम्यग्दर्शन में शुद्ध आत्मा का निर्विकल्प अनुभव है। शुद्ध आत्मा का अनुभव करना, वह अंतर्मुख भावश्रुत का कार्य है, वह कहीं विकल्प का कार्य नहीं। विकल्प में आनंद नहीं, उसमें आकुलता और दुःख है; भावश्रुत में आनंद और निराकुलता है।

विविध समाचार

सोनगढ़—परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। श्री नियमसारजी तथा श्री समयसारजी पर भाववाही आध्यात्मिक प्रवचन हो रहे हैं। विशाल परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य द्रुतगति से चल रहा है।

दिल्ली—तारीख 24 अप्रेल को पूज्य स्वामीजी का पालम हवाई अड्डा पर भव्य स्वागत हुआ। स्वागत के लिये सेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू की अध्यक्षता में 51 सदस्यों की एक कमेटी बनाई गई थी। भव्य-सुसज्जित कुन्दकुन्द-प्रवचन मंडप में स्वामीजी का मंगल प्रवचन हुआ, जिसमें स्वामीजी ने आत्मा के चिदानंदस्वभाव की परम महिमा समझाते हुए कहा कि ऐसे आत्मा का स्वरूप प्रेम से श्रवण करना और उसकी प्रतीत करना, वह भी मंगल है। सुबह एवं दोपहर के प्रवचनों में हजारों जिज्ञासु उत्साह से स्वामीजी अमृत वाणी का लाभ लेते थे, आसपास के कई शहरों से भी जिज्ञासुगण लाभ लेने के लिए आये थे। दिल्ली के उपनगरों में भी स्वामीजी के प्रवचन हुए थे। स्वामीजी के प्रभाव को देखकर सभी प्रसन्न होते थे। सेठ श्री शांतिप्रसादजी शाहू के द्वारा स्वामीजी को अभिनंदन-पत्र अर्पण किया गया। अनेक कवियों ने अपनी काव्यशक्ति से स्वामीजी का गुणानुगान किया। स्वामीजी के दिल्ली पधारने एवं वाणी का श्रवण करने से ऐसा प्रतीत होता था कि आज भारत की राजधानी धन्य हुई है कि आज यहाँ तीर्थंकरों की वाणी सुनने को मिल रही है... और चैतन्य महिमा के प्रभाव के राजधानी गूँज रही है—यही भारत देश का गौरव है... यही भारत की शोभा है। स्वामीजी 28 तारीख को कलकत्ता पधारे।

ग्वालियर (म.प्र.)—दिनांक 4 अप्रैल से 15 अप्रैल तक श्री पंडित धन्नालालजी द्वारा जैन सिद्धांत प्रवेशिका के आधार पर शिक्षण प्रवचन तथा रात्रि में शास्त्र प्रवचन हुए। तारीख 4 अप्रेल से 18अप्रेल तक सोलहकारण विधान बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाया गया। श्री पंडित राजमलजी भोपालवालों के द्वारा सूक्ष्म चर्चा व धार्मिक प्रवचन हुए।

दिनांक 1 मई से 30 जून तक दो माह के लिये ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर आयोजित किया गया है। जिसमें स्थानीय बालक-बालिकाओं व महिलाओं को शिक्षण दिया जाता है। विभिन्न शिक्षण कक्षाएँ चलाई जा रही हैं। बालक, युवक और प्रौढ़ व्यक्तियों में जैन सिद्धांत के प्रति रुचि जागृत हो रही है।

मेहगाँव—यहाँ पर ब्रह्मचारी हेमराजजी द्वारा निरंतर प्रयत्न के फलस्वरूप समाज में तत्त्वाभ्यास करने की भावना एवं धर्म जागृति हुई और मुमुक्षु मंडल एवं वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना हुई।

गुना—पंडित श्री ज्ञानचंद्रजी विदिशावाले 14-15 अप्रैल को गुना पधारे। आपके अनेक प्रवचन हुए। आपने शिक्षण पद्धति के आधार पर धर्म के स्वरूप का विवेचन किया। समस्त समाज ने उत्साह पूर्वक प्रत्येक कार्यक्रम में सम्मलित होकर लाभ लिया।

इंदौर—दिनांक 10 मई से 25 मई तक 15 दिवसीय ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर पूर्व वर्षों की तरह आयोजित किया गया। जिसमें अतिथियों को भोजनादि व्यवस्था नि:शुल्क रखी गई थी। विद्वानों में पंडित रतनलालजी शास्त्री इंदौर, श्री पंडित उत्तमचंदजी, श्री पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, श्री पंडित बाबूलालजी तथा अंतिम 5 दिन श्री बाबूभाई फतेपुरवालों के प्रवचनों का समाज ने लाभ लिया। — रतनलालजी गंगवाल

विदिशा—पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियरवालों के द्वारा 15 अप्रैल से 21 अप्रैल तक शिक्षण प्रवचन हुए। तथा श्री पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा 22 अप्रैल से 30 अप्रैल तक प्रवचन हुए। जिससे समाज में अच्छी धार्मिक जागृत हुई है।

विदिशा (म.प्र.) में 26मई 1973 से 15 जून 1973 तक 20 दिवसीय विस्तृत कार्यक्रम है। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित श्री वीतराग विज्ञान अध्यात्मिक पंचम शिक्षण व प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया है। जिसका उद्घाटन सेठ पदमचंदजी सर्राफ आगरा द्वारा एवं श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर का उद्घाटन श्री सेठ पूरणचंदजी गोदीका जयपुरवालों के द्वारा होगा। श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड व पंचम प्रशिक्षण शिविर का दीक्षांत समारोह श्री सेठ गजानंदजी पाटनीजी के द्वारा होगा। इस कार्यक्रम में श्रीमान पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, श्रीमान पंडित बाबूभाई महेता फतेपुर, श्रीमान पंडित फूलचंदजी बनारस, श्री युगल किशोरजी कोटा, डॉ. हुकमचंदजी जयपुर आदि लोकप्रिय प्रवचनकार पधार रहे हैं। संक्षिप्त कार्यक्रम—

प्रात: 7.30 से 8.30 बजे तक एवं रात्रि के 8.30 से 9.30 बजे तक प्रवचन, दोपहर 2 से 4 बजे तक प्रशिक्षण कक्षाएँ, प्रात: 8 से 10 बजे तक बाल कक्षाएँ व सायं 7 से 8 बजे तक भक्ति का कार्यक्रम होगा। आप भी सम्मिलित होकर धर्म लाभ लें।

मुमुक्षु का जीवन ध्येय

— ज्ञानी संतों के शरण में निवास करता हुआ मुमुक्षु अपने जीवन में एक ही ध्येय रखता है कि मैं अपने आत्मा की साधना करूँ।

— अपने इस सर्वोच्च ध्येय की सिद्धि के लिये वह दिन-रात उत्कृष्ट उत्साहपूर्वक प्रयत्न करता है।

— ऐसा उद्यम करनेवाला जीव अन्य साधर्मियों के प्रति भी उसे अत्यंत वात्सल्यभाव उल्लसित होता है।

— अपने उत्तम ध्येय को साधने के लिए मुमुक्षु को ज्ञानभावना और वैराग्यभावना उसे जीवन में साथीदार हैं। जगत की किसी भी पंचात में वह रस नहीं लेता... आत्मिकरस के घोलन में ही उसे रस है।

— देव-गुरु-शास्त्र की सेवा में वह अत्यंत उत्साह से वर्तता है, और उनके आदर्श द्वारा अपने ध्येय की साधना करता है। देव-गुरु के आत्मगुणों को पहिचानकर अपने में उनकी प्रेरणा लेता है।

— सांसारिक जीवन में सुख-दु:ख की चाहे जैसी अनुकूलता-प्रतिकूलता में भी वह अपने ध्येय को शिथिल नहीं करता। तथापि उत्तम पुरुषों के आदर्श जीवन को अपनी दृष्टि समक्ष रखकर वह आराधना का उत्साह बढ़ाता है... आत्मा की महिमा बढ़ाता जाता है।

— यह जीवन है, वह आत्मा को साधने के लिये है, इसलिये उसकी एक भी क्षण निष्फल ना जाये और प्रमाद रहित आत्मसाधना के लिए प्रत्येक क्षण व्यतीत हो जाये, इसलिये वह जागृत रहता है और जीवन में ऊँच-नीच के चाहे जैसे प्रसंगों में भी वह अपने आत्मसाधना का ध्येय शिथिल नहीं करता।

— प्रतिदिन आत्मा में मग्न होने का प्रयत्न करता है। अकेले-अकेले आत्मा के एकत्व को शोध शोधकर अंतर की शांति का स्वाद लेने के लिये प्रयत्न करता है।

—ऐसा मुमुक्षु आत्मा को अवश्य साधता है, और अपूर्व शांति को प्राप्त होता है।

मंगल बधाई

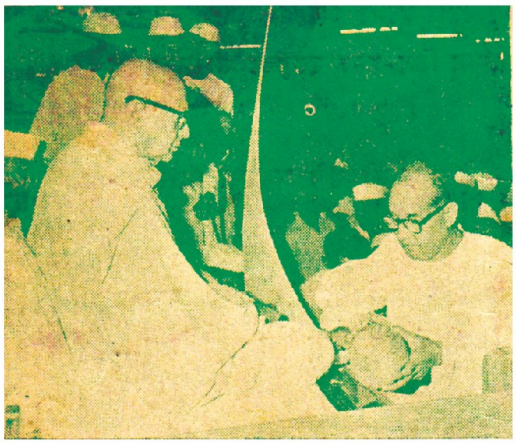

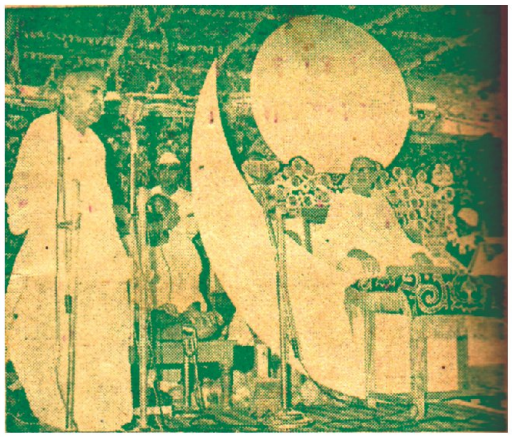

अहा, धन्य बनी कलकत्ता नगरी... कि जहाँ पूज्य स्वामीजी की जन्मजयंति का मंगल उत्सव मनाया गया। धन्य हुए मुमुक्षु-हृदय कि चैतन्य का अगाध महिमा दिखलानेवाले स्वामीजी का जन्मोत्सव मनाने और उनकी अमृतभरी वाणी सुनने का सौभाग्य हमें मिला। भारत के सर्वश्रेष्ठ संत का जन्मोत्सव भारतवर्ष की सबसे बड़ी नगरी में मनाया गया। कलकत्ता वह तो 'कर्मकटा' बन गया। कर्म के बंधन से मुक्त कराकर चौरासी के चक्कर से छूटने का और सिद्धालय के मार्ग पर चलने का रास्ता बतलाकर संतों ने जगत के जीवों पर जो उपकार किया है।—उससे विशेष अन्य कोई उपकार इस जगत में नहीं है। अहो, ऐसे संत जयवंत वर्ते।

भारत की दिगम्बर जैन समाज के नेता श्री साहू शांतिप्रसादजी ने वैशाख शुक्ला दोज के दिन पूज्य स्वामीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि—मैं अपने को बहुत भाग्यशाली समझता हूँ कि जब आप यह उपदेश दे रहे हैं, उसी काल में मेरा जन्म हुआ, और मुझे यह सुनने का अवसर बारंबार मिल रहा है। दूर से भी जो आपका नाम सुनते हैं और जो आपकी पास आते हैं, वे सब एक ही लगन से आते हैं कि आप हमें सम्यग्दृष्टि होने का जो रास्ता बतला रहे हैं, उस रास्ते से हम सम्यग्दृष्टि बनें। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने यह बात कही थी, भगवान श्री कुन्दकुन्द ने भी उसी बात को दुहराया और यही बात आज आप दिखला रहे हैं। आज फिर समाज में जागृति आ गई है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)